RNI No. BIHHIN05272
ISSN 2349 - 1906

साहित्य अकादेमी के नवीनतम हिंदी प्रकाशन

1. कबीर : एक चयन
संपादक : रामबक्ष राय
पृ. 115, मूल्य 100 रुपए
आइएसबीएन : 978-81-260-4329-1

2. हिमालय में (साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत अंग्रेजी यात्रा-वृत्तांत)
लेखक : रवींद्र केळेकार
अनुवादक : प्रभा सि. भट
पृ. 84, मूल्य 75 रुपए
आइएसबीएन : 978-81-260-4322-4

3. बर्फ पर बने पदचिह्न (साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत कश्मीरी उपन्यास)
लेखक : प्राण किशोर
अनुवादक : रफ़ीक मसूदी
पृ. 120, मूल्य 100 रुपए
आइएसबीएन : 978-81-260-4338-5

4. कालरेखा (साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत तेलुगु उपन्यास)
लेखक : डॉ. ओल्गा
अनुवादक : [illegible]
पृ. 436, मूल्य 300 रुपए
आइएसबीएन : 978-81-260-4553-2

5. नरेश मेहता रचना संचयन
चयन एवं संपादन : प्रभाकर श्रोत्रिय
पृ. 341, मूल्य 300 रुपए
आइएसबीएन : 978-81-260-4009-4

6. खिलाने वाली चिड़िया (किशोर उपन्यास)
लेखक : प्रकाश मनु
पृ. 143, मूल्य 100 रुपए
आइएसबीएन : 978-81-260-4765-5

7. बीसवीं सदी का हिंदी महिला-लेखन (खंड-3)
संपादक : ममता कालिया
पृ. 308, मूल्य 400 रुपए
आइएसबीएन : 978-81-260-4545-7

8. बीसवीं सदी का पंजाबी काव्य
संपादक : सुतिंदर सिंह नूर
अनुवादक : फूलचंद मानव, योगेश्वर कौर
पृ. 736, मूल्य 450 रुपए
आइएसबीएन : 978-81-260-4309-5

9. यशपाल का रचना-संसार
संपादक : शंभु बादल, [illegible]
पृ. 228, मूल्य 150 रुपए
आइएसबीएन : 978-81-260-4547-1

10. रवीन्द्र मनीषा (रवीन्द्रनाथ की कृतियों और निर्मितियों का अनुशीलन)
लेखक : रणजीत साहा
पृ. 672, मूल्य 400 रुपए
आइएसबीएन : 978-81-260-4768-6

11. माखनलाल चतुर्वेदी रचना-संचयन
चयन एवं संपादन : कृष्णदत्त पालीवाल
पृ. 490, मूल्य 300 रुपए
आइएसबीएन : 978-81-260-4320-[illegible]

12. नंददुलारे वाजपेयी रचना-संचयन
चयन एवं संपादन : [illegible]
पृ. 522, मूल्य 400 रुपए
आइएसबीएन : 978-81-260-4555-[illegible]

13. सीर का घर (साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत राजस्थानी कविता-संग्रह)
लेखक : [illegible]
अनुवादक : अनिरुद्ध उमट
पृ. 100, मूल्य 100 रुपए
आइएसबीएन : 978-81-260-4554-0

14. [illegible] (भारतीय साहित्य के निर्माता : उर्दू कवि)
लेखक : शाफ़े क़िदवई
अनुवादक : [illegible]
पृ. 142, मूल्य 50 रुपए
आइएसबीएन : 978-81-260-4640-9

कृपया अपने आदेश सचिव, साहित्य अकादेमी, विक्रय विभाग, रवीन्द्र भवन मार्ग, नई दिल्ली - 110001 पर भेजें।
फोन : 011-23745297, 23364204
टेलीफ़ैक्स : 011-23364207
ई-मेल : sahityaakademisales@yahoo.com

साहित्य यात्रा
वर्ष 2 अंक 5 अप्रैल-जून 2015
डॉ. कलानाथ मिश्र

ISSN 2349 - 1906

साहित्य यात्रा

वर्ष 2 अंक 5 अप्रैल-जून 2015

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

संपादक
डॉ. कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

संपादक

डॉ० कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

वर्ष-2 अंक-5 अप्रैल-जून 2015

परामर्शी

डॉ० सूर्य प्रकाश दीक्षित
डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव
डॉ० शोभाकांत मिश्र
डॉ० रामशोभित प्रसाद सिंह
डॉ० संजीव मिश्र

सम्पादकीय सलाहकार
श्री आशीष कंधवे

सहायक संपादक
डॉ० रवीन्द्र पाठक

संपादक
डॉ० कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा पटना क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में संपादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक हैं।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

RNI No. BIHHIN05272
ISSN 2349 - 1906

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के पुनः उपयोग के लिए लेखक,
अनुवादक अथवा साहित्य यात्रा की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
'अभ्युदय'
ई-112, श्रीकृष्णपुरी
पटना-800001 (बिहार)
मोबाइल : 09835063713
ई-मेल : sahityayatra@gmail.com

मूल्य : ₹ 45

शुल्क दर :

एक वर्ष (4 अंक)	₹ 300
तीन वर्ष (12 अंक) (डाक खर्च सहित)	₹ 750
संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	₹ 1100
आजीवन सदस्यता	₹ 11,000
विदेश के लिए	60 डॉलर (3 वर्ष)

शुल्क '**SAHITYA YARTA**' के नाम पर भेजें।

'साहित्य यात्रा' त्रैमासिक डॉ० कलानाथ मिश्र के स्वामित्व में और उनके द्वारा 'अभ्युदय' ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001, बिहार से प्रकाशित तथा आभा पब्लिसिटी, 163, देशबंधु गुप्त मार्केट, करोलबाग, नई दिल्ली से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : डॉ० कलानाथ मिश्र।

अनुक्रम

संपादकीय
डॉ० कलानाथ मिश्र 7–11

यात्रा संस्मरण
दिविक रमेश
साहित्य-स्मारक का वैभव 12–16

चिंतन
'पद्मश्री' गजेन्द्र नारायण सिंह
ग़ज़ल गायकी और कलावंत तावायफ़े 17–23

ललित निबंध
जयप्रकाश मानस
कवि की उपस्थिति 24–30

आलेख

डॉ. वीणा कुमारी
बाल श्रमिक समस्या एवं भारतीय संस्कृति 31–35

उमेश प्रसाद
हिन्दी राम काव्य परम्परा में रामचरित मानस का स्थान 36–44

करुणा पीटर
आधुनिक युग में कबीर की प्रासंगिकता 45–49

आशा कुमारी
हिन्दी-साहित्य और महादेवी वर्मा का रहस्यवाद 50–55

प्रगति चौधरी
नासिरा शर्मा की रचनाओं में चित्रित महिलाओं का स्वरूप 56–58

रेखा रानी
हिन्दी का वैश्विक स्वरूप 59–62

समीक्षा

डॉ. कृष्णदेव मिश्र
गीतों के दिन पुनः फिरेंगे : एक नजर 63-67

डॉ० अर्चना त्रिपाठी
कविता को सशक्त बनाता 'रीढ़' 68-72

डॉ. सविता मिश्र
चोंच में आकाश सौंदर्यात्मक अन्विति से परिपूर्ण गीत 73-79

कहानी
डॉ. निरूपमा राय
बचपन 80-86

नवांकुर कविता
यशवर्धन शिवपुत्र
उड़ान 86

कहानी
अरविन्द कुमार मुकुल
प्रथमा 87-92

नवांकुर कविता
अभिजीत मिश्र
पैसे की हैसियत 93-94

दस्तावेज कविता
वल्लरी और वृक्ष 95-96

सम्पादकीय

✍ डॉ० कलानाथ मिश्र

विगत दिनों बोर्ड की परीक्षा में हुए व्यापक कदाचार के कारण बिहार सुर्खियों में रहा। नकल करने और करवाने का वीभत्स चित्र देश भर के मीडिया में लगातार आ-आकर मुँह चिढ़ाता रहा। कई देशी-विदेशी मित्रों ने कटाक्ष भरे लहजे में हालात का जायजा लेते हुए अफसोस जताया। खासकर इसलिए कि शिक्षा का मामला था और प्राध्यापक होने के नाते हमारा शिक्षा से सीधा वास्ता है। पहला दिन अफसोस और शर्म में बीता। हम सरकार और व्यवस्था पर आक्रोश व्यक्त करते रहे, खीझ निकालते रहे। किन्तु बाद में मन इस कदाचार के मूल कारणों को तलाशने में लग गया। इस तलाश ने मुझे बहुत पीछे- आज से करीब 40-50 वर्ष पीछे-अपने स्कूली जीवन के अतीत में पहुँचा दिया। इन कारणों का विश्लेषण-विवेचन करने से पूर्व मैं आपके समक्ष अपने उन दिनों के कुछ दृश्य साझा करना चाहता हूँ।

स्मृति पटल पर गाँव का दृश्य उभर रहा है। पाँच बजे सुबह, आँगन से दादी के गाने की आवाज कानों में गूँज रही है। प्राती का धुन...

'जागहु राम कृष्ण दोउ मूरत
दशरथ नन्द दुलारे .....
उदय होत, उदयाचल आए
ज्योति पंख पसारे .....

दादी जिसे हम सब 'बाबी' कहते थे, गा रही थी। आँगन में ही लगे फूल तोड़ रही थी। पूजा की सराय माँज रही थी। वहीं 'सरधामाय' यानी 'श्रद्धा की माँ'। अपने ज्येष्ठ संतान के नाम से, वह भी बेटी के नाम से जानी जानेवाली माँ। जिसके नाम ही पड़ गया 'सरधामाय'। जाने उसके माता-पिता ने बचपन में उसका नाम क्या रखा था, पता नहीं। शायद गाँव में किसी को भी पता नहीं था उसका असली नाम। अब सोचता हूँ उन दिनों नारी सशक्तिकरण का इतना जोर नहीं था तब भी वह बेटी के नाम से ही जानी जाती थी।

एकाएक वात्सल्य की मिठास में घुली उसकी आवाज कान में आयी, 'बाबू, उठूँ। बाबू, अब उठ जाओ।' संपूर्ण आलस्य त्यागकर तुरत उठ जाते थे हम सब भाई। नित्य कर्म से निवृत्त होकर चबूतरे पर खल्ली से लिखने बैठ जाते।

पहली बार जब भगवती-घर में केले के पत्ते पर चावल रखकर और उँगली पकड़ कर दादा ने अक्षर की दुनिया से परिचित कराया था वह तो याद नहीं, पर चबूतरे पर खल्ली लेकर 'अ' लिखने का अभ्यास अभी तक स्मृति पटल पर अंकित है। स्कूल जाने

के लिए हाथ में ही कॉपी-किताब लेकर चल देते पैदल। न कोई स्कूल बैग, न जाने को साइकिल। पैदल केहुनी के बीच किताब-कॉपी थामें स्कूल की ओर चल देते। क्या मजाल कि देर हो जाय। एक 'रिद्म' था जीवन में। एक लयात्मकता थी। पंक्तिबद्ध होकर शुरू करते प्रार्थना-

हिमाद्रि तुंग ऋृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती।
अमर्त्य वीर पुत्र हो दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पंथ है बढ़े चलो, बढ़े चलो.....

ये पंक्तियाँ आज भी कंठहार हैं। प्रार्थना की लय आज भी होठों पर है। राजेन्द्र राय हेडमास्टर थे। श्रीकांत ईश्वर, मंजर इमाम, मौलवी साहब, लक्ष्मीबाबू आदि शिक्षक। विद्यालय-भवन खपड़ैल ही था। फर्श मिट्टी का, जिसे हम सब छात्र खुद ही तार के पत्तों का झाड़ू बनाकर बारी-बारी साफ किया करते थे। रास्ता आम के बागीचे से होकर निकलता था। आगे दोनों ओर खेत के बीच बाँध था। हम सब बाँध से होकर स्कूल जाया करते थे। बरसात में बाँध बीचे से कट जाता था और करीब 10 मीटर तक पानी का बहाव। मुझे आज भी याद है- सालों-साल हम लोग बरसात में स्कूल के टूटे बेंच के पटरों को बाँस के बल्ले के सहारे जोड़ कर उस धार को पार किया करते थे। दोनों ओर वह पटरों वाली नाव रस्सी के सहारे पेड़े से बाँधा जाता और पार कर हम स्कूल पहुँचते। एक गजब का उत्साह और कौतूहल का भाव हुआ करता था। न बाँध के लिए सरकार से कोई शिकायत, ना हल्ला गुल्ला। भाव यह था कि पढ़ना है तो यह सब तो स्कूल जाने के लिए करना ही पड़ता है। यदि कोई समस्या है तो गाँव के लोग ही मिल-बैठकर समाधान निकाल लेते। स्कूल में खाना बनते कभी नहीं देखा था। वह हमारा पाठशाला था, पाकशाला नहीं। घर में सिखाया जाता 'पढ़ोगे लिखोगे बनोगे नबाब.....' पर अब पता चला कि नवाबी तो बचपन में ही थी। उस खेत-खलिहान के बीच, पोखर के किनारे बसे स्कूल में। पता नहीं, हमें पढ़ने, स्कूल जाने के लिए वह कौन-सी बात थी जो उत्साहित किया करती थी। अभिभावक कहते मन लगाकर पढ़ो। ईमानदारी से परीक्षा में लिखना। जितना आता रहे उतना ही लिखना। वही काम देगा। उसी में तुम्हारा भविष्य है, बेहतरी है। और सख्त हिदायत कि खबरदार यदि मास्टर साहब ने तुम्हारी कोई शिकायत की मेरे सामने।

आज अचानक एक यथार्थ से सामना हुआ। अभिभावकों को परीक्षा में चोरी कराने के लिए छज्जे पर लटकते देखा, खिड़कियों पर झूलते देखा, चिट-पुर्जे पहुँचाने के लिए पुलिस जवान को रिश्वत लेते देखा, भागते-दौड़ते देखा।

शिक्षा के प्रति जागरूकता पैदा करते, बड़े-बड़े विज्ञापन छापते, विभिन्न प्रकार से प्रोत्साहन देते, लोभ दिखाते हम कहाँ पहुँच गये हैं। बच्चों के हाथ में हमने किताब की जगह कटोरा थमा दिया। सदाचार सिखाते-सिखाते कदाचार सिखाने लगे। हम क्या सिखाने

बच्चों को भेजते हैं स्कूल? क्यों हम उनके जीवन की शुरूआत ही कदाचार के साथ कराते हैं। ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर हमें ढूँढ़ना होगा।

सरकार इन मुद्दों पर विधवा-विलाप करती नजर आती है। पूछे जाने पर बगलें झाँकती नजर आती है। इच्छाशक्ति का घोर अभाव तो है ही, कभी-कभी ऐसा भी प्रतीत होता है कि राजनीतिक गलियारों से प्रकारान्तर से प्रश्रय ही मिलता है कदाचार को। हमारे पदाधिकारीगण! वे तो पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी हैं किन्तु शिक्षा के मामले में वे क्यों उदासीन रहते हैं। इस बार भी कदाचार पर अंकुश लगाने का श्रेय न्यायालय को ही मिला। आखिर न्यायलय की फटकार से वैसे इनकी नींद उचट जाती है। वे स्वप्रेरित होकर क्यों नहीं भारत के भविष्य को संवारने का काम करते हैं। विडंबना यह है कि हम जितना अधिक शिक्षा, साक्षरता को प्रोत्साहित करने का प्रयास करते हैं उतना अधिक शिक्षा का बाजारीकरण होता है। संपूर्ण शिक्षा पद्धति अपने मूल उद्देश्य से भटक गयी है। नारी सशक्तिकरण की दौड़ में बच्चियों को शिक्षित करने हेतु जितनी आर्थिक योजनाएँ बनाई गयीं सबका परिणाम उल्टा हो रहा है। साठ प्रतिशत से अधिक अंक लाने वाली बच्चियों को दस हजार रुपए देने का प्रावधान है। किन्तु दस हजार की लालच में अभिभावक बच्चियों के भविष्य के साथ खिलवाड़ करते दिखे। मुझे तो यही लगता है कि उलटी हो गई सब तदवीरें, कुछ दवा ने ना काम किया ...।

प्रश्न उठता है कि क्या शिक्षा के लिए प्रेरित, प्रोत्साहित (मोटिवेट) करने के लिए अर्थ का लोभ देना ही एक उपाय है? इस उपाय की वजह से ही कहीं हम उन्हें शिक्षा के मूल उद्देश्य से तो नहीं भटका रहे हैं। शिक्षा शिक्षा के लिए, ज्ञान के लिए, सम्मान के लिए, जीवन की उलझनों से निकलने का मार्ग प्रशस्त करने के लिए नहीं हो सकता। जब तक शिक्षा शिक्षित होने के उद्देश्य से ग्रहण करने के लिए हम प्रेरित नहीं होंगे तब तक यह कदाचार शायद ही कम होगा।

यह हाल केवल बिहार का नहीं, केवल विद्यालयी शिक्षा का नहीं, बिहार तो एक उदाहरण है। उच्च शिक्षा की भी कमोबेश यही हालत है। आज हर समस्या का हल हम अर्थिक दृष्टि से ढूँढने का प्रयत्न करते हैं। अर्थ का शास्त्र हमपर इतना हावी हो गया है कि हम जीवन का मूल अर्थ ही खोते जाते हैं। हम अर्थ केवल रुपए को जानते हैं। रुपए के अर्थ तले शब्द का अर्थ खोता-सा जा रहा है। शब्द है तो विचार है। शब्द का अर्थ नहीं समझते तो विचार का अर्थ नहीं समझ सकते। विचार का अर्थ नहीं तो जीवन का क्या अर्थ हो सकता है? फल यह होता है कि हमारे बच्चे संघर्ष के पूर्व ही हार मान लेते हैं। बिखर जाते हैं और तब नैतिकता, सहिष्णुता, फर्ज, धैर्य ये सभी शब्द बेमानी लगने लगते हैं। इनके अर्थ वे नहीं समझ पाते।

कॉलेजों में बिना उपस्थिति के फॉर्म भरना चाहते हैं। शाम, दाम, दण्ड, भेद सबका प्रयोग करते हैं। 75% उपस्थिति की बात बेमानी है। क्लास नहीं करने वालों के लिए मुक्त

विश्वविद्यालय है पर वे बिना क्लास किए, बिना पढ़े परीक्षा पास करना चाहते हैं और सारे हथकंडे अपनाते हैं। इसकी ट्रेनिंग उन्हें स्कूल से ही मिल चुकी होती है।

प्रश्न गंभीर है। समाधान भी एक दिन का नहीं, किन्तु सरकार अपनी जिम्मेदारी से बच नहीं सकती। हमें यह जानना चाहिए कि शिक्षा ही शक्ति है। शिक्षा ही धन है। नॉलेज इज पावर। क्या करूँ? फिर वही घिसी-पिटी बात सुनाता हूँ। उसी में समाधान है और शिक्षा ही सार्थकता है-

विद्या ददाति विनयम्, विनयाद्याति पात्रताम्।

पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्।

विनय और पात्रता के बिना शिक्षा का ध्येय पूरा नहीं हो सकता। इन गुणों के बिना कर्म-धर्म, सम्पन्नता, सुख सब अथहीन हैं।

आइए अब जरा 25 से 27 अप्रैल तक पटना में आयोजित अखिल भारतीय कथा समारोह की बात कर लें। सरकार की ओर से साहित्यिक समारोहों के आयोजन की नीति सराहनीय है। साहित्य समाज को आईना दिखाता है और उसके चित्त का परिष्कार करता है। अतः सरकार के इस पहल का स्वागत किया जाना चाहिए। किन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि आयोजकों की दृष्टिहीनता के कारण ऐसे आयोजन महज औपचारिक बनकर रह जाते हैं। इस से सरकार के उन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो पाती जिस महती उद्देश्य के लिए सरकार लाखों रुपए खर्च करती है।

सूत्रों के अनुसार बिहार कला संस्कृति विभाग ने प्रो. रामवचन राय, डॉ. उषाकिरण खान और बिहार संगीत नाटक अकादमी के अध्यक्ष आलोक धन्वा की त्रिसदस्यीय कमिटी बना रखी थी जिसकी देखरेख में कथा समारोह होना था। किन्तु समिति ने समारोह के महती उद्देश्यों की बलि चढ़ाकर संकीर्णतापूर्वक अपने सगे संबंधियों को लाभ पहुँचाने में लग गयी। मैं अपनी ओर से ज्यादा कुछ न कहकर लोगों की कुछ प्रतिक्रियाएँ आपके सामने रखना चाहता हूँ।

नई धारा के संपादक एवं चर्चित कवि समालोचक ने अपनी प्रतिक्रिया देते हुए कहा कि-''पटना में आयोजित अखिल भारतीय हिन्दी कथा समारोह आयोजकों की दृष्टिहीनता की वजह से नाना विसंगतियों का शिकार हो अपने अंजाम तक पहुँचने से पहले ही बुरी तरह हाँफता नजर आया।''

दिल्ली से अनंत विजय ने तो वृहत् प्रतिक्रिया दी है- ''बिहार सरकार इस बार हिंदी कथा समारोह का आयोजन कर रही है। दिलचस्प बात यह है कि आयोजन की जिम्मेदारी संभाल रहे लोगों ने अपने रिश्तेदारों को प्रतिभागी बना दिया है। कहानीकारों में एक नाम ऐसा है जिससे साहित्य जगत परिचित नहीं है। उनकी कहानियाँ पता नहीं कहाँ छपी हैं। इसी तरह से एक वरिष्ठ कथाकार को समीक्षक के कलम में डाला गया है। यह किस तरह का आयोजन है जहाँ रेवड़ियाँ बँट रही हैं।'' आगे वे कहते हैं- ''आज एक दोस्त

ने उषाकिरण खानजी का एक पोस्ट मुझे ह्वाट्सएप पर भेजा है। जिसमें उन्होंने माना है कि बिहार कथा समारोह में अपनी बहुचर्चित बेटी को अपनी कहानी 'दूब-धान' के मंचन के लिए बुलाकर गलती की। चलिए कम से ये एहसास और गलती मानने का सार्वजनिक साहस तो उषाजी ने दिखाया। कम लोग अपनी गलती सार्वजनिक तौर पर स्वीकार कर पाते हैं। क्या रामवचन राय भी उषा जी की राह पर चलेंगे?''

आशय स्पष्ट है कि क्या रामवचन रायजी भी आयोजन में रहते हुए अपने प्रभाव का लाभ उठाकर अपनी पत्नी को लाभ पहुँचाने के लिए माफी मागेंगे?

प्रश्न यह भी है कि क्या माफी माँग लेने से आयोजन पर लगे भेद-भाव और भाई-भतीजावाद के आरोप धुल जाएँगे? सोमा बंदोपाध्याय कविता समारोह में भी आयीं और कथा समारोह में भी। समीक्षक खगेन्द्र ठाकुर को अपने सत्र में बोलने ही नहीं दिया गया। उसी सत्र में पद्माशा झा और इन्दु मउआर का कथा पाठ था। सरकारी आयोजनों में शिक्षण संस्थानों की उपेक्षा की जाती है। आयोजन समिति में यही तीन लोग रहते हैं। जो लोग रहते हैं वे अपनी मनमानी करते हैं। पूरे समारोह में अव्यवस्था का माहौल रहा। मैं खामियाँ गिनाने में विश्वास नहीं रखता पर इतना तो कहना होगा कि कुल मिलाकर लाखों खर्च के बाद यह आयोजन अपेक्षित प्रभाव सृजित करने में असफल रहा।

अंत में साहित्य यात्रा के बारे में। हमारे लिए यह अत्यंत हर्ष की बात है कि साहित्य-यात्रा ने समय की पगडंडी पर चलते हुए एक साल की यात्रा पूरी कर ली है। इसके प्रकाशन का शुभारंभ हमने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की 150वीं जयंती पर मई 2014 में किया था। यह पाठकों, रचनाकारों एवं प्रकाशन टीम के सहयोग का ही परिणाम है कि पत्रिका के अंक अबतक अबाध गति से प्रकाशित होते रहे हैं। हिंदी साहित्य संसार में पाठकों ने इसका गर्मजोशी के साथ स्वागत किया है तथा समय-समय पर वे अपने सुझाव एवं सराहनाएँ हमें भेजते रहे हैं। पाठकों की सराहनाएँ एवं प्रतिक्रियाएँ किसी भी पत्र-पत्रिकाओं के लिए संजीवनी होती हैं। वे हमारा उत्साहवर्द्धन एवं दिशानिर्देशन करती हैं। मुझे आशा है कि आगे भी उनका ऐसे ही सक्रिय सहयोग मुझे मिलता रहेगा और 'साहित्य-यात्रा' दीर्घायु हो सकेगी।

10 मई, 2015
पटना

डॉ. कलानाथ मिश्र
संपादक

साहित्य-स्मारक का वैभव

● दिविक रमेश

दक्षिण कोरिया के प्रवास के दौरान सृजन के कई सवालों से रु-ब-रु होने का अवसर मिला। रचना और विचार के नये अनुभव हुए। वहाँ की समृद्धि-संस्कृति ने मन पर गहरा असर डाला। कई पुराने सवालों ने भी जब-तब सोचने को मजबूर कर दिया, क्योंकि नये समय और संदर्भों में भी उनकी पहुँच बनी हुई है। ऐसे ही सवालों में एक है -'रचना बड़ी है या रचनाकार?' मध्य-मार्गियों के लिए भले ही इस सवाल का जवाब आसान हो कि रचना और रचनाकार दोनों ही बड़े हैं लेकिन अन्य लोगों के लिए यह सवाल उलझाव से भरा है। दार्शनिक शब्दावली में कहें तो सृष्टि से बड़ा स्रष्टा है, लेकिन क्या हम इस शब्दावली का उपयोग उन रचनाकारों के संदर्भ में भी कर सकते हैं जिन्हें हम कविता, कहानी, चित्रकला आदि के संदर्भ में जानते हैं? यूं ऐसे सवालों पर सोचने की शायद जरूरत नहीं पड़ती यदि रचना और रचनाकार के प्रति कोरियाई लोगों का एक सर्वथा नया रूप न देखा होता। वस्तुतः कोरिया ने बड़ा अद्‌भुत जवाब दिया था इसका। कम से कम मेरे संदर्भ में।

भले ही अध्यापन के लिए गया था, लेकिन कोरिया प्रवास के प्रारम्भ (1994) से ही मेरी रुचि कोरिया के साहित्य और संस्कृति को जानने-समझने की हो गई थी। इसका एक कारण यह भी था कि दुर्भाग्य से हमारे दोनों देशों के बीच अनुवाद के माध्यम से होने वाले साहित्यिक आदान-प्रदान की स्थिति को मैंने एकदम नगण्य पाया था। हिंदी का बहुत कम साहित्य कोरियाई में और कोरिया का भी बहुत कम

मैंने किम छंग योंग को अपने मन की बात कही। किम ने बताया कि स्मारक शिला पर कवि का नाम तो है ही साथ में उसकी एक बहुत ही प्रसिद्ध कविता 'पहाड़ों में फूल' उत्कीर्ण है। 'ओह तो यह बात है'- मेरे मुंह से सहसा निकला था। मैं उक्त कविता का हिंदी में अनुवाद कर चुका था।

साहित्य हिंदी में उपलब्ध था। यह तब था जब हिंदी के पास विराट और अत्यंत महत्त्व का साहित्य उपलब्धथा, इधर कोरियाई में भी बहुत महत्त्वपूर्ण लिखा जा चुका था। हम किम सो वॉल जैसे आधुनिक नयी कोरियाई कविता के जनक एवं अत्यंत लोकप्रिय कवि से कहाँ ठीक से परिचित थे! इस कवि का कोरिया में, हिंदी में निराला का-सा स्थान है। इसी प्रकार कथा-साहित्य में अपनी कम ही कृतियों के माध्यम से 1948 में जन्मे यी मुन यॉल ने जो स्थान बना लिया है उसकी ठीक-ठीक जानकारी मिल जाये तो उन कृतियों को पढ़े बिना नहीं रहा जा सकेगा। 'खलनायक' उपन्यास कोरिया की सीमाओं का अतिक्रमण कर लाखों विदेशी पाठकों की प्रिय कृति बन चुका है, पर हिंदी में वह, मेरे माध्यम से, अब जाकर आ पा रहा है। मेरे विचार में आज कोरिया के साहित्य को हिंदी में और हिंदी के साहित्य को कोरिया में अनुवाद के माध्यम से उपलब्ध कराना अनेक दृष्टियों से अनिवार्य है।

जब मुझे अपने एक मित्र (हिंदी के पूर्व छात्र) किम छंग योंग से पता चला कि कोरिया में जगह-जगह साहित्यकारों के स्मारक देखे जा सकते हैं तो उन्हें देखने की मन में सहज ही उत्सुकता जागी। खास तौर पर दो स्मारक मैं जल्दी से जल्दी देख लेना चाहता था, जिनमें एक तो किम सो वॉल (1902-1934) का जिसकी कविताओं की सहजता, स्पष्टता, मार्मिकता और कोरियाई देसीयता से मैं काफी प्रभावित हुआ हूँ और दूसरा बांग जंग वान (1849-1931) का जिसने बच्चों और उनके साहित्य के बारे में अद्वितीय ढंग से सोचा था और बाल दिवस की स्थापना भी की थी जो अब 5 मई को मनाया जाता है। बांग के प्रति श्रद्धा जगने का एक और कारण यह भी रहा कि दुर्भाग्य से कोरिया में बाल-साहित्य सृजन की दिशा में वांछित ध्यान नहीं दिया गया है और न ही बाल-साहित्यकारों के प्रति यहाँ अपेक्षित उचित सम्मान की भावना ही मौजूद है। यों 'बांग जुंग ह्वान' को एक प्यारे नाम 'सो पा' के द्वारा वैसे ही जाना जाता है जैसे नेहरूजी को चाचा के रूप में। इन दोनों और अन्य साहित्यकारों के स्मारक सोल आदि शहरों में होने की सूचना मुझे किम से मिल गयी थी। सौभाग्य से सोल ही में मैं रहता हूँ। अत: कम से कम सोल स्थित स्मारक देखने का काम कठिन नहीं लगा।

दिन और समय निर्धारित हुआ। नामसन पार्क, हम दोनों, बावजूद खराब मौसम के, पैदल ही गये। पता चला कि बांग जुंग ह्वान का स्मारक वहाँ से बच्चों के बड़े पार्क में स्थानांतरित कर दिया गया- काफी पहले। लेकिन वहाँ सबसे पहले देशभक्त आन जंग कुन (गुन) की मूर्ति देखने को मिली जिसका कोरिया में वही स्थान है जो हमारे यहां गांधीजी का। नक्शे से यह तो पता चल ही गया था कि वहाँ किम सो वॉल और एक अन्य कोरियाई बड़े कवि चो ची हुन के स्मारक हैं। मन में यह उत्कट चाह थी कि इन दोनों कवियों

की मूर्तियों के सामने श्रद्धा व्यक्त करता चलूँ। अपने देश में तो रचनाकारों के स्मारक कितने और कैसे हैं, किसी से छिपा है नहीं, इसमें दोष मौजूदा साहित्यकारों का भी कम नहीं है। मुझे लगा था कि रचनाकारों को ठीक से सम्मानित करने की तमीज प्राप्त करने में अभी बहुत समय लगेगा। सच कहूँ तो उस समय का समकालीन साहित्यिक परिदृश्य भी सामने आ खड़ा हुआ था। याद करूँ तो मैं, स्वयं को केन्द्र में रखकर, कोरिया के उस तात्कालिक परिवेश में सोच रहा था कि हिन्दी सृजन का यह दुर्भाग्य ही है कि व्यवहार में यह स्थिति लुप्तप्राय: है अथवा कहीं किसी कोने में उपेक्षित पड़ी सिसकने को बाध्य है। व्यक्ति और समूह, दोनों स्तरों पर एक अवांछनीय व्यक्तिवाद-अहंकारग्रस्त व्यक्तिवाद-हावी है। माध्यम के प्राय: तमाम साधन और (प्रभावशाली) आलोचक, सम्पादक आदि इस रोग के मारे हुए हैं। होड़ रचना या कहूँ श्रेष्ठ रचना को सामने लाने की उतनी नहीं रही है जितनी अपने-अपने खेमे के रचनाकारों को पब्लिसाइज और स्थापित करने की रही है। इस प्रवृत्ति के चलते कितनी ही श्रेष्ठ रचनाएँ उपेक्षित पड़ी दम तोड़ रही हैं। अपवाद स्वरूप हरिवंश राय बच्चन द्वारा संपादित कविता संकलन जरूर राहत की तरह सामने है। मैं शायदऔर भी बहुत कुछ सोचा होता या सोच लेता अगर मेरे साथ चल रहे किम छंग योंग ने ध्यान न बटाया होता क्योंकि हम गन्तव्य के करीब थे।

सबसे पहले हम किम सो वॉल के स्मारक पर पहुँचे। किम ने बताया कि यही है हमारे बड़े और लाड़ले कवि का स्मारक जिनकी मृत्यु कम उम्र में हो गई थी। लेकिन यह क्या? वह स्थल तो मेरी आशा और कल्पना के एकदम विपरीत निकला। मैं किम की ओर प्रश्नवाचक निगाहों से देखता रह गया। असल में वहाँ महज पत्थर थे जिन पर कोरियाई भाषा में कुछ लिखा था। मैंने यह सोचते हुए कि पत्थर पर कवि का नाम और थोड़ा-बहुत परिचय लिखा होगा, निराशा का अनुभव किया। मैं तो अच्छे खासे बुत की अपेक्षा कर रहा था। मैंने किम छंग योंग को अपने मन की बात कही। किम ने बताया कि स्मारक शिला पर कवि का नाम तो है ही साथ में उसकी एक बहुत ही प्रसिद्ध कविता 'पहाडों में फूल' उत्कीर्ण है। 'ओह तो यह बात है'- मेरे मुँह से सहसा निकला था। मैं उक्त कविता का हिंदी में अनुवाद कर चुका था। खैर, मेरा मन श्रद्धा प्रकट करने के उस कोरियाई ढंग के प्रति नत हो आया। रचना का इससे ज्यादा सम्मान और क्या हो सकता है? रचना जो कि निस्संदेह अपने रचनाकार को भी उम्र देती है, क्या इसी रूप में सच्ची पहचान नहीं पाती? क्या ऐसे स्मारक वास्तव में इस सत्य को उजागर नहीं करते कि रचना ही रचनाकार की सच्ची पहचान है? वस्तुत: अब तक मैं गलत था। मैं बार-बार कवि-स्मारक देखने की इच्छा संजोये हुए था- और वह मेरी भारतीय मानसिकता थी। लेकिन यहाँ तो रचना (कविता) स्मारक था। ऐसा ही रचना-स्मारक मैंने दूसरे कवि चो ची हुन के नाम पर देखा। वहाँ भी उसकी एक कविता पत्थर पर खुदी थी। वह कविता

एक उदास कविता है। यह जान कर मैं और भी नत हो गया कि स्मारक के पास रखे छोटे-छोटे पत्थर किसी श्रद्धालु पाठक के श्रद्धा सुमनों के प्रतीक हैं। यह श्रद्धा प्रकट करने की कोरियाई देहाती परंपरा है जो आज भी मौजूद है। पास ही खिलने को उत्सुक मू खुंग हवा की कलियों से लदा वृक्ष था। मू खुंग हवा कोरिया का राष्ट्रीय फूल है। हवा (चीनी शब्द) का अर्थ है-फूल और मू खुंग का-सदा बहार। असल में यह फूल खिलने पर लगभग 100 दिनों तक खिला रहता है।

दोनों ही स्मारक स्थलों पर मैं द्रवित हो गया था। एक तो इसलिए कि कविताओं में कोरियाई कविताओं का खास एवं प्रसिद्ध गुण 'हन' जिसका खींचतान कर 'दर्द' अथवा अवसादपूर्ण करुणा अर्थ लगाया जा सकता है, मौजूद था और दूसरे इसलिए कि जब पत्थरों तक ने रचना के महत्त्व को अपने सीने से लगा रखा था तो मैं तो प्राणी हूँ, पत्थरों ने बिना किसी बनावट के, बहुत ही सहजता के साथ रचना की सच्ची पहचान करा दी थी।

किम सो वॉल की कविता 'पहाड़ों में फूल' काफी हद तक त्रिलोचनी है - यानी ऊपर से सादी भीतर से गहरी। अपने द्वारा किये गये अनुवाद को प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं हो पा रहा है--

खिलते हैं फूल, पहाड़ों में
खिलते हैं
बसंत में
गरमी और शरत् में
खिलते हैं फूल, पहाड़ों में
कोई नहीं देखता जहाँ
खिलते हैं वे
दूर, पास, अकेले।
अकेले ही।
बस रहते हैं यहाँ
पक्षी
चहकते
बंधे फूलों के प्यार में, पहाड़ों पर।
झड़ते हैं फूल, पहाड़ों में
झड़ते हैं
वसंत में
गरमी और शरत् में।

जैहयुन जे, किम के अंग्रेजी अनुवाद और किम छंग योंग के सीधे कोरियाई से अंग्रेजी में बताये गये भावार्थ की सहायता से हिंदी में अनूदित।

एक दूसरे स्मारक का जिक्र करना चाहूँगा। यह स्मारक भी एक रचना (कविता) स्मारक ही है। सोल स्थित हन्यांग विश्वविद्यालय के परिसर में, एक विशिष्ट स्थान पर बनाया गया है जिस तक आसानी से निगाहें जा सकती हैं। स्मारक है कोरिया के एक बहुत बड़े कवि पाक मोक वॉल की कविता का। इस कवि की एक विशेषता अपनी कविताओं में लोक-गीतों की ताकत के प्रयोग के रूप में मानी गई है। ये छोटी-छोटी कविताओं के लिए भी प्रसिद्ध हैं।

और अंत में यह भी कि जल्द ही बच्चों के बड़े पार्क में भी जाने का मौका मिला-किम के साथ ही। वहाँ एक बच्चे को गोद में लिए बांग जुंग ह्वान की अत्यंत प्रभावशाली मूर्ति के दर्शन भी अपने आप में एक विशिष्ट अनुभव था। थोड़ी दूरी पर एक अन्य बाल कवि कांग सो छन का स्मारक था- किम सो वॉल और चो ची हुन की ही तर्ज पर। यहाँ कवि की 'मुर्गा' शीर्षक से एक चार पंक्तियों की शिशु-कविता पत्थर पर अंकित थी। मुझे सहसा पूर्व जर्मनी अब तो जर्मनी एक है, की यात्रा करते समय एक शहर में एक जन-लेखक के कथा-पात्रों के आधार पर निर्मित मूर्तियों की स्थापना भी याद हो आयी थी।

ग़ज़ल गायकी और कलावंत तावायफ़े

● 'पद्मश्री' गजेन्द्र नारायण सिंह

ग़ज़ल की शुरूआत तो अरबी अदब से हुई, पर ईरानी यानी फ़ारसी शायरी में आकर ग़ज़लों ने नया रूप-रंग अख़्तियार किया। ग़ज़ल के मायनें हैं, 'माशूका से गुफ़्तगू'। ग़ज़लों में प्रेम कथाएँ होती हैं। प्रेम, मोहब्बत, इश्क, माशूका, आशिक से संबंधित फ़ारसी और उर्दू साहित्य में जो कविताएँ लिखी जाती हैं यानी जो शेर या नज़्म लिखे जाते हैं, वे ग़ज़ल कहलाती हैं लेकिन ग़ज़ल के विकास के क्रम में आगे चलकर और भी बातें ग़ज़ल में आयीं। भौतिक प्रेम के अलावा ईश्वरीय प्रेम यानी इश्के हकीकी और इश्के मज़ाजी का जरिया ग़ज़ल बनी। यही वज़ह है कि उर्दू अदब में भक्ति की शायरी के लिए ग़ज़ल का व्यवहार इबादत के लिए किया जाता है। ग़ज़ल के संकलन को 'दीवान' कहा जाता है।

ग़ज़ल को पारिभाषित करते हुए किसी दिलवर ने वज़ा फ़रमाया है, 'प्रणय की कोई छोटी सी चित्तचोर कहानी, प्रणयिनी की बलखाती ज़ल्फों में प्रेमी के तड़पते प्राण।' यानी एक भाववाही उप-शास्त्रीय गेय विधा के रूप में ग़ज़ल हिन्दुस्तानी संगीत में प्रतिष्ठित हुई। भारतीय और मुस्लिम संस्कृति के समन्वय से जो 'गांगी-जमुनी यानी सांफी तहजीब आयी उसकी उत्कृष्ट देन है-ग़ज़ल गायकी। जिसमें अदब और मौसिक़ी की मिली-जुली छवि की घटा देखते-सुनते बनती है।

ग़ज़ल कहने वाले को ग़ज़लगो और शायरों का ग़ज़लसरा कहते हैं। ग़ज़ल कहना ग़ज़लगोई कहलाती है।

फ़ारसी के ग़ज़लगों और ग़ज़लसरा में रूमी, हाफ़िज़, बेदिल अज़ीमाबादी, मिर्ज़ा असदुल्लाह खान 'ग़ालिब' और शहंशाह औरंगज़ेब की सुपुत्री शहज़ादी

मीरतक़ी 'मीर' के प्रशंसकों में ज़ौक' थे। मीर की तारीफ में वह फ़रमाते हैं, 'न हुआ पर न हुआ 'मीर' का अंदाज़ नसीब, 'ज़ौक़' यारों ने बहुत जोर ग़ज़ल में मारा'। खुद 'मीर' क्या कहते हैं, ग़ौरतलब है, 'मीर' की बस्ती में अज़ब शाम हुई है, लहज़ों के थपेड़ों को ग़ज़ल खोज़ रही है।'

ज़ेबुन्निसा 'मुख़्फ़ी' के नाम उल्लेखनीय हैं। ज़ेबुन्निसा को राजकोष से सालाना चार लाख रुपये मिलते थे जिसे वह ग़ज़ल की मज़लिसें लगवाने और शायरों पर खर्च कर देती थी (इतिहासकार हैवेल के हवाले से)।

ज़ौक़, मीरतक़ी 'मीर', मिर्ज़ा ग़ालिब, शहंशाह बहादुर शाह 'जफ़र', मोमिन, सौदा, 'शाद' अज़ीमाबादी आदि अपने जमाने के बेहतरीन ग़ज़लगो हो गए हैं। हिन्दू शायरों में रघुपति सहाय 'फ़िराक' गोरखपुरी का नाम मशहूर हैं।

अज़ीमाबाद-पटना के 'शाद' अज़ीमाबादी ऐसे उम्दा ग़ज़लगो थे कि उन्हें 'ग़ज़ल का शहंशाह' कहा जाता था। इसके अलावे 'रासिस' अज़ीमाबादी ऐसे शायर-ग़ज़लगो हुए जिनका लोहा मीरतक़ी 'मीर' ने माना। 'रासिस' अज़ीमाबादी का जरा तेवर तो देखिए, 'मत पूछिए मुझसे हाल मेरा, हैरतजदा क्या बयां करेगा' और 'खाक हूँ पर तूतियें हूँ चश्में मेहरोमाह, आँखवाला रूतबा समझे मुझ गुबारे राह का', इसे सुनकर एकांतवास कर रहे मीर तक़ी 'मीर' ने अपना दरवाज़ा खोलकर बाहर खड़े 'रासिस' मियाँ को गले लगा लिया और 'शाद फ़रमाते हैं, 'सफ़र ज़रूर है और उत्त की मजाल नहीं, मज़ा तो यह है, न मंज़िल है न रास्ता मालूम।' इनके अलावे अज़ीमाबाद-पटना में 'जोशिश', महाराजा रामनारायण 'मौजू', कुँवर महाराज बहादुर 'रहमती', 'शाद' रूकनुद्दीन 'इश्क', 'वाहिद', ऐसे दर्जनों एक-से-एक बढ़-चढ़कर शायर-ओ-ग़ज़लगो हुए जिन्हें हिदोस्ताँ के बड़े-बड़े नामचीन शायरों ने तबज़्जों दी।

मीरतक़ी 'मीर' के प्रशंसकों में ज़ौक' थे। मीर की तारीक में वह फ़रमाते हैं, 'न हुआ पर न हुआ 'मीर' का अंदाज़ नसीब, 'ज़ौक़' यारों ने बहुत जोर ग़ज़ल में मारा'। खुद 'मीर' क्या कहते हैं, ग़ौरतलब है, 'मीर' की बस्ती में अज़ब शाम हुई है, लहज़ों के थपेड़ों को ग़ज़ल खोज़ रही है।' 'ज़ौक़', शहंशाह 'ज़फ़र' के उस्ताद थे और उन्हें शाही रुतबा हासिल था। वह 'मीर' को 'ग़ालिब' से उ़म्दा, ग़ज़लगो मानते थे। उर्दू शायरी में जहाँ तक ग़ज़ल का सवाल है तो मुझ नाचीज़ का भी मानना है कि 'मीर' के मुक़ाबले कम ही शायर होंगे।

दिल्ली घराना के मेरे अज़ीज उस्ताद नसीर अहमद खाँ जब 'मीर' की ग़ज़ल 'यारों मुझको मुआफ़ करो मैं नशे में हूँ।' सुनाते थे तो मैं उनकी अदाकारी और अँदाजेबयाँ पर मर मिटता था। ग़ज़ल की उनकी पेशकशें बड़ी पुरअसर होती थीं। तभी तो मशहूर ग़ज़ल गायक जगजीत सिंह को ग़ज़ल के एक मिसरे के लिए ग्रीनरूम में नसीर भाई की चिरौरी करते और पाँव दबाते मैंने देखा था।

मिर्ज़ा ग़ालिब वैसे मग़रूर क़िस्म के शायर थे, पर 'मीर' की तारीफ़ करते वह भी नही अघाते थे और अज़ीमाबाद-पटना के 'बेदिल' अज़ीमाबादी को तो 'ग़ालिब' अपना उस्ताद मानते थे। 'बेदिल' इस तबके के शायर व ग़ज़लगो थे कि 'ग़ालिब' फरमाते हैं, 'तर्ज़ 'बेदिल' में रेख़्ता लिखना असदुल्लाह ख़ान क़यामत है।'

नसीब का मारा अन्तिम मुग़ल शहंशाह बहादुर शाह 'ज़फ़र' बेहतरीन शायर-ओ-ग़ज़लगो थे। गौरतलब है, वह ध्यान फ़रमाते हैं, '... कितना है बदनसीब 'ज़फ़र' दफ़न के लिए, दो गज़ ज़मीं भी मिल न सकी कूए यार में।' इस ग़ज़ल को पाकिस्तान के ग़ज़ल गायक वली मोहम्मद 'वली' ने गाकर रिकार्ड तोड़ दिया और अमर हो गए।

अज़ीमाबाद-पटना 18वीं से 20वीं सदी के पूवर्द्धि तक उर्दू-फारसी अदब, शेरोसुखन और मौसिक़ी का मर्क़ज़ माना जाता था। इस दौरान यहाँ की सरज़मीन शेर-ओ-शायरी की अज़ीम हस्तियों से आबाद रही, बल्कि ज़ोहराबाई पटनेवाली, बड़ी कनीज़, साहबजान 'माशूक', बांदीजान 'नाज़', और अमीरजान 'अमीर' सरीखी अव्वल दर्ज़े की शेरगो तवायफ़ें हो गयीं जिन्हें ग़ज़लगोई में भी महारत हासिल थी। कहते हैं, इनकी ग़ज़लों की 'दीवान' भी छपी थी जो फ़िलहाल अप्राप्त है। खोजबीन करने पर कुछ उर्दू-फ़ारसी की किसी लाईब्रेरी में मिल जायें तो कुछ ग़ज़ल और शायरी के शौक़ीन किसी रसिक के व्यक्तिगत संग्रह में उपलब्ध हैं।

अज़ीमाबाद-पटना का बासिन्दा होने की वज़ह से मैंने चंद अज़ीमाबादी शायरों जो नायाब ग़ज़लगो थे, का ज़िक्र किया- साथ ही यहाँ की उन नामचीन तवायफ़ों का भी उल्लेख किया जो शायरी में भी महारथ रखती थीं।

पर मुल्क की सरज़मीं में ऐसी और भी गजल लिखने और गानेवाली तवायफें हो गयीं जिन्होंने ग़ज़ल के इल्मोहुनर को परवान चढ़ाया और अपना मुक़ाम छोड़ गयीं। ऐसी हस्तियों में बनारस की हुस्नाबाई, अज़ीमाबाद की ज़ोहराबाई, इलाहाबाद की जानकीबाई 'छप्पनछूरी' और कलकत्तेवाली गौहरजान की ग़ज़लों की 'दीवान' भी हैं जो आसानी से सुलभ नहीं हैं।

कलकत्तेवाली गौहरजान, बनारस और इलाहाबाद की ज़द्दनबाई, आगरेवाली मलक़ाजान, मलिक़ा पुख़राज, फ़रीदाख़ानम, नूरज़हाँ, इक़बालबानों, मोख़्तार बेग़म (लाहौर), भागलपुर की क़ज़जान, अख़्तरीबाई फ़ैज़ाबादी (बेग़म अख़्तर), आविदा परवीन आदि के नाम ग़ज़ल गायकी से इस क़दर जुड़ी है कि इनकी गायी ग़ज़लें जिन रसिकों ने सुनी, वे उन यादगार सुरीले लम्हों का ज़िक्र करते नहीं अघाते।

सन् 1910 ई० की प्रयाग प्रदर्शनी में गौहरजान कलकत्तेवाली सार्वजनिक गायन के लिए विशेष रूप से आमंत्रित की गयी थीं। उसी दौरान वह 'अक़बर' इलाहाबादी के पास अपनी शायरी की 'दीवान' बतौर सौगात लेकर गयी थी। गौहरजान के विनम्र आग्रह पर 'अक़बर' इलाहाबादी ने उसकी तारीफ़ में एक शेर लिखकर दिया कि, 'आज 'अक़बर' कौन है दुनिया में गौहर के सिवा, सबकुछ खुदा ने दे रखा है इक शौहर के सिवा।

एक लम्बे समय तक ग़ज़ल की गायकी अमुमन कोठे से ही जुड़ी रही। पर कोठे से बाहर इसे लोकप्रिय बनाने में बिहार (अखण्डित) की कमला अरिया का बड़ा हाथ रहा। कमला का जन्म एक साधारण कामकाजी गृहस्थ परिवार में अरिया में हुआ था। पर कलकत्ता उसकी कर्म और साधना भूमि रही जहाँ बांग्ला के कालीभक्त कवि काज़ी

नज़रूल इस्लाम और उस्ताद ज़मीरूद्दीन खाँ की देखरेख में उसने संगीत में कुशलता प्राप्त की। कीर्त्तन अंग में पारम्परिक रचनाओं, ठुमरी एवं 'छोटीचीज', तथा लोकगीतों में उसकी विशेष रुचि थी। वह एक खास शैली में गाती थी जो उसकी अपनी मौलिक थी- 'मस्ती के जो उसूल हैं उनको निभा के पी, इक बूंद न भी कल के लिए तू बचा के पी' और 'न तुम मेरे न दिल मेरा, न जाने नातमा, तसव्वुर में भी आ नहीं सधती मजबूरियाँ मेरी', कमला अरिया की गायी ग़ज़लें बहुत मशहूर हुईं और आज भी उसकी अदायगी के लिए सराही जाती है।

वह ग़ज़ल को उसके संपूर्ण भाव, उसके क्षोभ, करुणा, आवेग, अर्थ व संकेत सहित बड़े सुन्दर ढंग से अदा करती थी। उसकी आवाज़ में इक रूमानियत थी जिसमें कह सकते हैं कि बिहारी पुट था। सरल, सहज और आडम्बररहित पेशकश के लिए उसे हमेशा याद किया जाता रहेगा। कमला अरिया के कई ग्रामो फ़ोन रिकार्डस (78 आर०पी०एम०) मेरे संग्रह में उपलब्ध हैं।

ज़द्दनबाई (फिल्म अभिनेत्री नर्गिस की माँ) के गान-कौशल, खासकर ग़ज़ल गाने की सिफ्त के बारे में श्री राजेश्वरी प्रसाद नारायण सिंह ने एक दिलचस्प वाकया सुनाया था। विरसिंगपुर (बिहार) के ज़मींदार श्री सरयू प्रसाद नारायण सिंह की पुत्री के विवाहोत्सव पर ज़द्दनबाई अपनी बड़ी बेटी के साथ ज़श्न में बुलायी गयी थी। ज़द्दनबाई ने तब गाना छोड़ दिया था। मुजरे के लिए बनारस से एक और तवायफ़ भी आयी थी। उसके आगे ज़द्दनबाई की बेटी का गाना फीका पड़ गया। फिर क्या था- ज़द्दनबाई के लिए यह मानसम्मान का प्रश्न था। सो वह पेशवाज़ पहन कर महफ़िल में जाहिर हुई। उसने बड़ी दर्द भरी एक ग़ज़ल सुनायी जिसका मिसरा यों था, 'मसीहा हो के बीमारों को किन पे छोड़े जाते हो, गली हमने कही थी तुम तो दुनिया छोड़े जाते हो।' फिर तो महफ़िल में हाय-हाय मच गयी। ज़द्दनबाई को शेर-ओ-शायरी से बड़ा शौक था। अक्सर उसके दीवानख़ाने में 'जोश' मलीहाबादी, 'ज़िगर' मुरादाबादी, 'सागर' निज़ामी सरीखे धुरंधर शायरों की जमघट लगती थी।

'वारवधू विवेचन' नामक पुस्त में रियासत कपूरथला की एक ज़ोहराबाई की चर्चा मिलती है जो पक्के गाने खासकर ग़ज़ल गाने में दखल रखती और अपने फ़न के लिए मशहूर थी।

लखनऊ की ज़ोहरा-मुश्तरी की जोड़ी विख्यात थी। मुश्तरीबाई ने मीर आग़ा अली 'शम्स' की देखरेख में ग़ज़लगोई और शायरी में क़माल हासिल की थी। मुश्तरी की बड़ी बहन ज़ोहरा थी। पण्डित विशनलाल 'तालिब' देहलवी ने मुश्तरी-ज़ोहरा की तारीफ़ में कई कथाएँ लिखी जिनमें यह शेर उनकी हुनरमंदी का इज़हार करती है, "सुआएँ शम्स ज़ोहरा-मुश्तरी है, बड़ी तो ख़ैर है, छोटी ख़री है।' लखनऊ में इनकी ग़ज़लों की धूम मची रही। बाद में ज़ोहरा ने निकाह करके गाने-बजाने से तौबा कर ली। पर मुश्तरी का शौक

जारी रहा। उसकी ग़ज़लें अपनी धाक जमाए थी। 'दीवाने मुश्तरी' नाम से उसकी ग़ज़लों का संग्रह भी छपा था।

बनारस की हुस्नाबाई का भी ग़ज़लगोई में बड़ा नाम था। वह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की समकालीन थीं। भारतेन्दुजी से उसका ख़त-खितावत भी चलता था। बनारस के रईस और संगीतानुरागी रायकृष्णदास ने अपने घुटपन में हुस्ना को देखा-सुना था। उनके अनुसार वह कविता भी करती थी। वह अच्छी शायरा थी - उसका 'दीवान' भी छपा था। हुस्नाबाई के क़लाम का नमूना गौ़र फ़रमाइये:

'आता यही है जी में कि बीमारे ग़म बनूँ,
वो पूछने आए कि हुस्न को क्या हुआ?
मेरी वो इल्तिज़ा कि तड़पता हूँ हिज्र में,
ज़ालिम का वो जवाब कि फिर क्या करे कोई।'

सलीक़ेदारी, तहज़ीब और शाइस्तगी की जीती-जागती तस्वीर इन बाइयों की नज़ाकत-नफ़ासत-लताफ़त-शराफ़त अब बतौर किस्सेपिन्हानी ही रह गए हैं। वर्ना आज तो 'बुलबुलों की ये हसरत है कि वो उल्लू न हुए, क्योंकि क़द्रदांओं की तबीयत का गज़ब रंग है आज'।

ज़ोहराबाई पटनेवाली न केवल अपने समय ठुमरी और 'छोटी चीज' की बेहतरीन अदाकारा थी, अपितु अव्वल दर्जे की शायरा भी थी। हज़रतशाह अक़बर दानापुरी से उसकी बड़ी अक़ीदत थी। शाह साहब उस ज़माने में बिहार के बड़े मसनबी रचनाकारों में उच्चस्थान रखते थे। उनकी सोहबत की वज़ह से ज़ोहरा अच्छी ग़ज़लगों और ग़ज़लसरा बन गयी थी। उसके 'दीवान' के चंद क़लाम मुलाहजा हो,

'पी के हम तुम जो चले झूमते मयख़ाने से,
झुक के कुछ बात कही शीशे ने पैमाने से,
हमने देखी है किसी शोख़ की मयगो आँखें,
मिलती जुलती है छलकतें हुए पैमाने से।

कहते हैं, उसकी ग़ज़लों में बड़ी क़शिश थी। 'शाद' अज़ीमाबादी उसकी गायी ग़ज़लों पर जा छिड़कते थे। अक्सरहां अपनी मज़लिसों में वह ज़ोहराबाई को दावत पर बुलाया करते थे। अदब और मौसिक़ी की अज़ीम शख्सीयतों से भरपूर अज़ीमाबाद-पटना दरअसल पूरब में लखनऊ की तरह इल्मोहुनर का मर्कज था, बल्कि कई मायने में तो लखनऊ और देंहली से भी बढ़-चढ़कर था।

यह तो गुज़िस्ता ज़माने की चंद वारांगनाओं की ग़ज़ल गायकी और ग़ज़ल लिखने में महारत के अफ़साने जो अब अतीत के घूसर गर्त में समा गए हैं।

अपने समकालीन जिन ग़ज़ल गायिकाओं से मैं मुतासिर हुआ उनके फ़ने-इल्म के मुज़ाहिए भी लाज़िमी है। अपने समकालीन ग़ज़ल गायिकाओं में रूबरू मैंने अख़्तरीबाई फ़ैज़ाबादी यानी बेग़म अख्तर को खूब सुना और उनकी सोहबत में रहा भी। इसके अलावे

जिन्हें रेडियो, टी०वी० और रिकार्डों के जरिए सुना उसमें उल्लेखनीय हैं- पाकिस्तान की नूरज़हाँ, इक़बाल बानो, फ़रीदाखानम, मलका पुखराज, आविदा परवीन और लाहौर की मोख़्तार बेग़म। ये सभी अपने-अपने फ़न में बेमिसाल थीं और हैं।

जिस महफ़िल में फ़रीदाखानम अपनी ग़ज़ल 'आज जाने की ज़िद न करो' और मलक़ा पुख्राज 'अभी तो मैं नदान हूँ' गाती होतीं तो सुननेवालों में हाय तौबा मच जाती थी, गोकि क़यामत बरपाती थीं।

लाहौर की मोख्तार बेग़म के फ़ने ग़ज़ल की चर्चा और तारीफ़ सुविख्यात ध्रुपद गायक पण्डित रामचतुर 'मल्लिक' मुझसे जब-तब करते थे। कम ही लोगों को मालूम है कि मल्लिक जी ग़ज़लें भी बखूबी गाते थे। उनकी अदायगी में उस्तादाना रंग हुआ करता था। इस इल्मोहुनर के चलते समकालीन तवायफें उन्हें बतौर उस्ताद इज्जत बख़्शाती थीं।

पर जहाँ तक ग़ज़ल में क्लासिकी, साथ ही गंवई टच को अपनी अदाकारी में अख़्तरीबाई पेश करती थी वह उल्लिखित सभी गायिकाओं से उन्हें सर्वोत्कृष्ट बनाती थीं। उनके समय के सभी ग़ज़ल गायक और गायिकाओं ने बेग़म के फ़न का लोहा माना। बड़े इल्मीनान और संजीदगी से ग़ज़ल के एक-एक मिसरे को ऐसे कहती थीं कि लगता था उसमें उनकी साँस बसी हो। बड़ा चैन-ओ-सकून मिलता था उनसे ग़ज़लें सुनकर।

मेंहदी हसन जिन्हें ग़ज़ल का 'शहंशाह' माना जाता था वो बेग़म अख़्तर के किस कदर मुरीद थे, इस संबंध में एक प्रेरक प्रसंग का ज़िक्र करना चाहूँगा। एक बार गणतंत्र दिवस के जलसे में क़राची, पाकिस्तान स्थित भारतीय दूतावास में शिरकत करने ख़ासतौर से वह बुलायी गयी थीं। उन्होंने अपने गायन की शुरूआत एक दादरे से की जिसके बोल थे, 'आओ सजन तुम हमरे अटरिया पे, सारा झगड़ा खतम हुई जावे'। वक्त की नज़ाकत की मुफ़ीद यह दादरा पाकिस्तानी सुनकारों को ऐसी लगी कि लगातार चार-पाँच बार फ़रमाइश करके वहाँ के रसिकों ने उसे सुना।

इसके बाद बेग़म अख़्तर ने ग़ज़लों की पेशकश की। सम्माननीय श्रोताओं में उत्ताद मेंहदी हसन भी उक्त महफ़िलेखास में मौजूद थे। जब बेग़म साहिबा गाना खत्म कर चुकीं तो मेंहदी हसन अपनी जगह से उठकर उनके पास गए और सलाम बजाते हुए कहा, 'बेग़म साहिबा! न जाने लोग इस नाचीज़ को 'ग़ज़ल का शहंशाह' क्यों कहते हैं? आप जिस अंदाज़ और कलात्मकता से ग़ज़लें पेश करती हैं कि मुझे तो ऐसा लगता है यह नाचीज़ आपकी जूतियों के बराबर भी नहीं है।' यह था, एक सधे पहुँचे नामचीन कलाकार का दूसरे कलाकार के प्रति अपनी श्रद्धा और अपना उद्‌गार व्यक्त करने का नायाब लहज़ा और ईमानदारी। बड़े लोगों की बात कुछ और ही होती है। ज़ाहिर है, ग़ज़ल गायकी में अख़्तारीबाई अपने समय में बेमिसाल थीं।

मल्लिका-ए-ग़ज़ल बेग़म अख़्तर की गायकी बड़े-बड़े घरानेदार उस्तादों और पण्डितों के सिर चढ़कर बोलती थी। दरअसल उनकी ग़ज़लों में रागदारी की रूहानी खुशबू रची-बसी होती थी।

बेग़म ने सिर्फ ज़ौक़, मोमिन, दाग, मीर, सौदा, ग़ालिब जैसे ग़ज़ल के पायेदारों की ग़ज़लें ही नहीं गायीं, बल्कि अनजान शायरों की नज़्मों को भी अपनी रूहेखानी से लोगों तक पहुँचाया। इस संदर्भ में एक बड़ा ही रोचक वाकया है जिसे कहना चाहूँगा। एक बार बेग़म साहिबा मुम्बई के किसी जलसे को रौशन करके ट्रेन से लखनऊ वापिस लौट रही थीं कि विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन पर उभरते शायर शकील बदायूंनी ने उन्हें कागज का टुकड़ा थमा दिया। उन्होंने उसे अपने बटुए में रख लिया। दोनों में से किसी को पता नहीं था कि कागज का वह टुकड़ा ग़ज़ल की बगिया में क्या गुल खिलाने वाला है।

सुबह होते ही भोपाल तक तो कागज बटुए में ही बंद रहा। पर सुबह-सुबह जैसे ही बेग़म को सिगरेट की तलब हुई कि कैप्सटन की कश लेते ही उन्हें उस कागज की सुध आयी। फिर क्या था, मौक़े के माधूल यानी भैरवी के सुर में कागज पर लिखी ग़ज़ल को पढ़ती हुई हारमोनियम पर गुनगुनाने लगी, 'ऐ, मोहब्बत तेरे अंजाम पर रोना आया' और अगला स्टेशन आते-आते पूरी ग़ज़ल भैरवी के धुन में स्वरबद्ध हो गयी। लखनऊ पहुँकर बेग़म अख्तर ने ऑल इण्डिया रेडियो के लिए ख़ासतौर से वह ग़ज़ल गायी और उसका आखिरी मिसरा 'जब हुआ ज़िक्र ज़माने में मोहब्बत का 'शकील' सुनकर लोगों ने जाना कि वह ग़ज़ल शकील बदायूंनी की थी। इस तरह बेग़म अख़्तर की आवाज़ में वह ग़ज़ल आनेवाले दिनों के लिए 'ग़ज़ल की दुनिया' की 'सिग्नेचर ट्यून' बन गयी। ऐसी न जाने कितने ही अनजान शायरों की रचनाएँ बेग़म अख़्तर की आवाज़ में कालजयी बन गयीं।

बड़ी ज़िन्दादिल, मिलनसार, दिलदार, और हँसमुख खुशनुमा शख़्सीयत थीं, बेग़म अख़्तर। काफी अरसां हुए दशहरा के दिन बाँकीपुर क्लब, पटना के एक जलसे में बेग़म साहिबा आमंत्रित थीं। गज़ब की महिला थीं वह- चेन स्मोकर, पान-ज़र्दा का धड़ल्ले से इस्तेमाल और 'दुख़्तरेरज़' (शराब) से भी शौक रखती थीं। पर मौला की कैसी नेमत थी उन पर कि आखिरी साँस तक उन की आवाज में कहीं राईभर भी खराश नहीं आयी- जवाँ रही। पाकदिल इंसान थी।

हाँ तो मैं बाँकीपुर क्लब, पटना में हुई उनकी महफ़िल का ज़िक्र कर रहा था। सुबह दस बजे वह गाने बैठीं और शाम पाँच बजे तक बगैर विश्राम लिए गाती रहीं। क्या दमखम, स्टेनिमा थी उस ढलती उम्र में भी कि लगातार सात घंटे तक 'छोटी चीजों' और ग़ज़लों से सुनकारों को अपने स्वरों के जादू में उलझाये रखीं। और अल्लामियाँ को पाकदिल रूहानियत से लबरेज़ उस फ़नकारा से कैसी मोहब्बत थी कि अहमदाबाद के एक जलसे में गाते-गाते ही उनकी 'साँस' 'सम' पर आकर अटक गयी और अल्ला को वह प्यारी हो गयी।

'आभोगी', 11/बी, श्रीकृष्णपुरी, सहदेव महतो मार्ग, पटना-800001

कवि की उपस्थिति

(बोधिसत्व की कविताएँ पढ़कर एक निबंध)

● **जयप्रकाश मानस**

कवि दुनिया की भौतिकी में विचरण करते हुए भी एक नैतिक, आत्मिक और मानवीय दुनिया के लिए ताउम्र समर्पित होता है। यही कविता का रसायन है। दरअसल कवि का अंतिम लक्ष्य दुनिया का चकाचौंध वैभव नहीं, दुनिया की समरस उज्ज्वलता होती है। जिसे किसी लिखित, पठित, अनुदित दर्शन या विज्ञान से सीमित नहीं किया जा सकता।

कवि अकेला उपस्थित रहता है। लगभग निपट अकेला। इधर उसकी उपस्थिति दुनिया महसूसना नहीं चाहती। उधर वह समूची दुनिया को अपने में उपस्थित देखता है। फिर भी, दुनिया के डाकखाने में उसका कोई अता-पता नहीं होता। कविता उसका वास्तविक परिचय होती है किन्तु वह कवि के परिचय का आधार नहीं बन पाती। नोबेल पुरस्कार ग्रहण करते वक्त कवयित्री विस्लाव शिम्बोर्स्का ने कहा था- ''क्या गर्व के साथ एक कवि अपना परिचय देने में सक्षम होता है कि वह कवि है?" वह खुद को कवि के रूप में प्रस्तुत करने से आखिर घबराता क्यों है? ऐसा क्यों होता है कि कवि बहुरि अकेला हो जाता है? आखिर क्योंकर वह दुनिया से नहीं कह पाता- "हाँ मैं एक कवि हूँ?"

कवि जिस दुनिया में रहता है, वह उसकी दुनिया नहीं होती। मिली हुई दुनिया सिर्फ उसकी ही नहीं, मनुष्य मात्र के लिए एक नरक जैसी भी हो सकती है। वह हरदम नरक जैसी दुनिया के बरक्स एक प्रतिदुनिया रचने की उधेड़बुन में उपस्थित रहता है। क्योंकि दुनिया में हर समय एक भयावह जंगल बढ़ता रहता है। क्योंकि दुनिया हर समय अधूरी होती है। कवि इस अधूरे को पूरा करता है। दुनिया में हर समय 'अभाव' रहता है। कवि इस अभाव को 'भाव' में तब्दील करता है। दुनिया में हर समय कुछ न कुछ, कोई न कोई अपरिचित रहने को विवश होता है। कवि अपरिचिति के किला को तोड़ने वाले एक सिपाही के

जिद्दी धुन का नाम है। क्योंकि दुनिया में हर समय मनुष्यता का सबसे सुंदर फुल खिलाये जाने की संभावनाएँ बची होती हैं। कवि जब कहता है–

हर कोई छोड़ता है
कुछ न कुछ अधूरा....
जिसे पूरा करते हैं
दूसरे लोग

तब वह उस दूसरे के दुख और अधूरेपन को जी रहा होता है, जो हो सकता है अभी–अभी नदी में नहाते–नहाते डूब गया है या फिर, एक जला दी गई स्त्री, जिसका सब कुछ छूट गया हो अधूरा।

कवि बेशक जानता है–अभी भर गया है हर पन्ना, कोने अंतरे तक खाली नहीं लिखावट से... फिर भी वह मानता है–

अभी बहुत कुछ
लिखने की जगह है मुझमें...
मैं तुम्हारी नोटबुक हूँ...
आओ लिखो....

कवि को अपनी सार्थकता को रेखांकित करने के लिए सुनहरे और कोरे कागज ना मिलें तो भी कोई बात नहीं। बस, उसे हाशिए वाले बचे हुए रद्दी कागज भर मिल जाये, जहाँ वह लिख सके–

कई ऐसे रास्तों के नक्शे
जिन पर दोबारा नहीं गया कोई..
कई न बन पाए घरों का खाका...
कितने बदल गए फोन नम्बर...
कितने अधूरे काम लिखे हैं मुझमें....।

कवि दुनिया की भौतिकी में विचरण करते हुए भी एक नैतिक, आत्मिक और मानवीय दुनिया के लिए ताउम्र समर्पित होता है। यही कविता का रसायन है। दरअसल कवि का अंतिम लक्ष्य दुनिया का चकाचौंध वैभव नहीं, दुनिया की समरस उज्ज्वलता होती है। जिसे किसी लिखित, पठित, अनुदित दर्शन या विज्ञान से सीमित नहीं किया जा सकता। इस समरस उज्ज्वलता को अपने–अपने चश्मे से देखकर कितनी ही कोशिशें न की जायें, वह एक अपरिभाषित तथ्य बना रहेगा। यह उज्ज्वलता ही कवि का अंतिम सत्य है। किन्तु उज्ज्वलता स्वयं में असीम है। क्योंकि दुनिया जितनी भौतिक है उतनी ही अभौतिक। क्योंकि दुनिया को जितना जाना जा सका है उतना ही अजाना है वह। क्योंकि दुनिया की सर्वोच्च और अंतिम उज्ज्वलता को सिद्ध करने के लिए अंतिम ज्ञान या शास्त्र अभी लिखा नहीं जा सका है। जो पैरामीटर या व्याकरण तय हुए हैं वे सारे के सारे सीमित

हैं। स्वयं विज्ञान अभी अपूर्ण है। जिसे हम अभी तक का चरम अन्वेषण कहते हैं, हो सकता है वही कभी सबसे तुच्छ साबित हो और विज्ञान उसके कहीं अधिक उपलब्धि अर्जित कर दिखाये।

तो कवि व्याकरण पढ़कर कविता नहीं लिखता । वह स्वयं नया व्याकरण सिखाता है। सिद्धांत के कारागार उसे बंदी नहीं बना सकते। किसी आलोचक की तानाशाही उसे निर्देशित नहीं कर सकती। वह किसी विचार का दास नहीं हो सकता, भले ही उसकी रंगत वहाँ दिखाई अवश्य दे । क्योंकि सिद्धांतों से जीवन, परिवेश और समय तय नहीं हुआ करते। क्योंकि हर विचार संशोधित हो जाया करता है। क्योंकि समय हर विचार को मृत्यु-शैया पर सुला देता है। काल सबसे बड़ा संशोधक जो ठहरा। अर्थात् संशोधन ही जीवन है। यह संशोधन आत्म भी है और अनात्म भी। संशोधन ही आधुनिकता है। संशोध न ही प्रगति है।

कभी कवि से पूछकर देखें तो "जब दुनिया में सर्वत्र बराबरी आ जायेगी, जब मनुष्य का कोई स्वप्न बचा नहीं रहेगा, तब आप क्या चाहेंगे?"

जानते हैं-जो वह कहेगा उसमें सारे पूरातन मूल्य, विचार, दर्शन, चिंतन, ज्ञान-विज्ञान आदि अनुशासन संशोधित होते दिखाई देंगे। जाहिर है कवि अपने समय में अधिकतम सुंदर मनुष्य और दुनिया देखने का एकमात्र स्वप्नद्रष्टा होता है। ऐसा स्वप्नद्रष्टा भला कैसे अपने सम्मुख उपस्थित दुनिया का निवासी हो सकता है!

कवि, जिसे दुनिया अकारज और फुरसतिया कहती है सबसे अधिक सक्रिय होता है। अपने गतिशील मन और संवेदना के साथ। कवि से बड़ा 'प्रगतिकामी' कोई नहीं होता। कवि से अधिक 'जनाकांक्षी' और कौन होता है! एक कवि का मन और संवेदना पहले प्रगतिशील या जनप्रिय होती है, बाद में उसकी कविता। गतिशीलता और जनप्रियता ही कवि को उकसाती हैं। क्या कवि को अलग से 'प्रगतिशील' या 'जनवादी' कहलाने की जरूरत भी होती है? मूलत: प्रगतिकामी और जनाकांक्षी होने के बाद भी कवि है कि पिछड़ता चला जाता है समाज में। सभ्यता के केंद्र उसे खारिज कर देते हैं, क्योंकि वह प्रश्नाकुलता से भरा होता है और केंद्र को प्रश्न पसंद नहीं होता।

कवि सभ्यता की फिक्र नहीं करता । वह मरता रहता है संस्कृति के लिए। क्योंकि उसे कोई नहीं बुझा सकता कि सुसंस्कृत नहीं, सभ्य होना ही अधिक जरूरी है। और सभ्यता भी ऐसी कि कई बार प्रतिबंधों की कोष्ठकों में फँसी हुई। जहाँ किसी नागरिक की परम स्वतंत्रता और भदेस इच्छाएं दम तोड़ देती हैं। बाहर से बहुत कुछ सुंदर, चिकना-चुपड़ा और भीतर से लगभग बजबजाती हुई गंदगी। सभ्य दुनिया की गंदगी से निजात पाने के लिए वांछनीय मेहत्तरी से उसकी प्रतिबद्धता उसे भीतर से तो अधिक उज्ज्वल बना देती है किन्तु धीरे-धीरे उसके इर्द-गिर्द एकाकीपन का अँधियारा घिरने लगता है। इस अँधियारे को रचते हैं - उपस्थित दुनिया को अंतिम सत्य समझकर परामर्श,

उलाहना, चेतावनी देने वाले उसके बंधु-बाँधव, परिजन । ऐसा कमतर ही होता है कि कवि को समान दृष्टिवाला घर-बार मिले । गाँव-गली-चौपाल मिले। लोग उसकी भाषा में देख सकें। अपनी दुनिया के कलह-कालुष्य, सुख-सौंदर्य को पहचान सकें। यह ठीक है कि वह भी किसी का बेटा होता है, किसी का भाई, किसी का प्रेमी, किसी का मित्र, किसी का पति और किसी का पिता। ये सब उससे रोज मिलते हैं किन्तु एक कवि से कोई नहीं मिलता। लोग-बाग बासी भाषा का कंदील पकड़े उस तक पहुँचना चाहते हैं और वह है कि ताजगी और नयी भाषा के उजास से भरी-पूरी एक पृथ्वी सौप देना चाहता है । उसके जैसे सोचने, सँवारने वाले लोगों की कमी धीरे-धीरे उसे भीतर से तोड़ने लगती है। शनैः शनैः कवि स्वयं घर-परिवार, पास-पड़ोस और समाज में अकेला पड़ता जाता है और अंततः एक सुनसान में खोये रहने को विवश। यह विवशता उसे और अधिक तेजस्वी भी बनाती है। यह विवशता उसके भीतर एक संगीत में तब्दील होकर बाहर गूँजने लगती है-

सब बड़े बाजों के
बीच... ढपली बज रही है...
न गूँजनेवाली
कमजोर... पिटी सी आवाज में...
अपनी ही तरह...
महफिल से बाहर... ।

दरअसल कवि महफिल के अँधेरे में नहीं होता। अँधेरा तो कवि और समाज के मध्य पसरा होता है। इस अँधेरे को चीरकर समाज की आँखें उस तक नहीं पहुँच पातीं जबकि कवि इस अँधेरे में रहकर भी जिंदगी की उजली चीजों को ढूँढ लेने का हुनर जानता है-

मुझे थोड़ा अँधेरा चाहिए
उतना जितने में,
रात होती रहे, दीये जलें
तारे टिमटिमाएँ, चाँद उगे, जुगनू उड़े...
सूरज उगे तो... पता चले कि
अँधेरा था अभी तक... ।
मुझे सचमुच
अँधेरा चाहिए
जहाँ मैं छुपकर मिल सकूँ
चूम सकूँ...
खेल सकूँ...
मनचाहा खेल.... ।

वस्तुतः कविता एक साफ-सुथरी दुनिया की तलाश ही होती है। कवि उस दुनिया की तलाश में रहता है, जो हर क्षण क्षीण और बदरंग हुई जाती है। जहाँ शब्द बगैर पढ़े रह जाते हैं। जहाँ लिखा हुआ भटकन के भँवर में विलीन होता रहता है। फिर भी कोई थिरकन तो कविता के शब्दों के बचा रहता है-

फिर शुरू होती हैं बातें अविराम
कलह और प्रेम की दुनिया ही है ऐसी
खत्म नहीं होता इसका धागा ।
कोई फिर चिट्ठी लिखता है
ढूँढता है किसी खो गए का पता।

लापता चीजों की फिराक में रहने वाला कवि मुख्यधारा में नहीं बह सकता। मुख्यधारा में कूड़े-कर्कट, सड़ी-गली चीजें, अनुपयुक्त अवशिष्ट, बहाव के आक्रमण में टूट चुके किनारों के जर्जर पेड़, कमजोर घास-फूँस सब कुछ होती हैं। इसलिए कवि इस मुख्यधारा से विलग होकर नयी धार बनाना चाहता है। यह नयी धार भले ही उसे कबीले का निवासी बना देती है किन्तु वह वहाँ से भी दुनिया को संबोधित करना नहीं भूलता। उसे कतई चिन्ता नहीं कि उसके कबीलाई जीवन में उसकी रोजी-रोटी के साधन बहुत अत्यल्प हैं। उसे कोई फिक्र नहीं कि वह सुनसान भोगने के लिए शापित है। उसे कोई इल्म भी नहीं कि यह सुनसान किसी वरदान से कम नहीं। कवि अपने सुनसान में कविता की चिड़ियों को बुलाता है और उनकी चहचहाहट से भरता है। इन चिड़ियों को वह सिर्फ अपने सुनसान के लिए नहीं बुलाता। उन्हें इसलिए बुलाता है कि नींद में निमग्न दुनिया चहचहाहट सुनकर जाग उठे। चारों तरफ सवेरा फैल जाये। वही दुनिया जो उसके लिए सुनसान बुनती है। जानते हुए भी कि यह दुनिया एक कवि या उसकी कविता की कोई परवाह नहीं किया करती। और उन मूल्यों की भी नहीं, जिससे एक पूरी और साफ-सुथरी कायनात टिकी होती है, और जिससे प्रतिबद्ध कवि हर जनम सुनसान भोगने को तत्पर होता है।

कवि जानता है कि दुनिया को सुंदर देखने के आंकाक्षी और उसके जैसे मानवीय मूल्यों के पक्षधर लोग कबीलों में ही रह सकते हैं। इसलिए कई बार घर-परिवार और अक्सर समाज व अपनी दुनिया की भीड़ में निकलकर बिलकुल अपने जैसों की स्मृति के खंडहरों में पुरातत्ववेत्ता की मानिंद भटकने लगता है-

जाने को जा सकता था घर
पर मन में बैठ गया था डर
लोटे से मारेगा बेटा
बहू कहेगी दुर...दुर...दुर...।

सुनने सहने की शक्ति नहीं
आँखें झरती थी झर-झर
बूढ़े पीपल के तरु तर
चुपचाप सो गया वह थक कर।

कवि की यायावरी उसका आवारापन नहीं, चीन्हे-अनचीन्हे चीजों के भीतर पैठने वाली तीर्थयात्रा है। कवि की उदासी का कारण बाहर का मौसम नहीं, भीतर का वह दर्द है जिससे लड़े बिना मोक्ष बेमानी होता है। इस मोक्षाकांक्षा से ही कविता उपजती है। दरअसल कविता उन जगहों की तलाश है जो विलीन होकर भी अपनी ओर बुलाती रहती हैं और जहाँ भविष्य की ठोस जमीनें बची होती हैं। दरअसल कविता वह आकांक्षित परिसर है, जहाँ एक आवारा लड़की के लिए भी घर बनाया जा सकता हो। जहाँ छिन्न-भिन्न होकर भी दूसरों को बसाने वाली और शांता जैसी बहने हों। जहाँ से व्रतधारी लड़कियों के प्रातःस्नान की आवाज सुनाई दे, शीत लहर या अलसाती हवा की दीवारों को लाँघती हुई। जहाँ घरों से निकाले जाने वाले बूढ़ों के लिए एक प्रेमचंद बसता हो। जहाँ मुहल्ले की लड़कियों का हाल-चाल जानना व्यभिचार न हो। जहाँ नमकदार मिट्टी हो। जहाँ बीज बोने से पहले धरती को माथ नवाने वाले किसान हों। जहाँ बूँदों की झमझम से बज उठने वाली आल्हादित धरती हो। जहाँ रात-रात-भर, जाग-जागकर खेत सींचने की कला सौपने वाली परंपरा हो। जहाँ गोदाम या चूल्हे-चक्की तक ही नहीं, चिड़ियों के लिए भी दाने बचाने की उदारता हो। जहाँ बार-बार की उजाड़ के बावजूद खुद को बसाने वाले जिद्दीवान लोग हों। जहाँ ब्लैक एंड व्हाइट चेहरे भी अपनी मौलिक सौदर्य से रंगीन दुनिया के आग्रही को अपने पास बुलाते हों। जहाँ एक दूजे से फँसकर मुस्कुराने वाली रोशनी हो। जहाँ प्राचीन स्मारक की तरह दिखने वाले आदमी हों। जहाँ वैश्विकता के बड़े-बड़े समुद्री बेड़ों की मौजूदगी के साथ-साथ देसी डोंगिया भी हों। दरअसल कवि ताउम्र इन्हीं छोटी-मोटी बातों वाली दुनिया को ढूँढता फिरता है । उसे कोई आपत्ति नहीं कि दुनिया बड़ी-बड़ी चीजों से क्यों न सज धज जाये, किन्तु वहाँ निहायत छोटी चीजें भी सही सलामत बचायी जाती रहें, क्योंकि उन छोटी चीजों के बिना कहना मुनासिब नहीं होता कि -

छोटा हूँ, पर रहने दो
छोटी छोटी बातें
कहता हूँ- कहने दो।

छोटी से छोटी बातों को भी तवज्जो देने वाला कवि उतना छोटा नहीं होता जितना छोटा उसे माना जाता है। कवि बड़े आदमी होने का प्रमाण है। इतना बड़ा कि अपने विरोधियों को भी बर्बाद करने से बचता रहे। इतना बड़ा कि उसे कोई दूसरा छोटा नजर नहीं आये। बड़ा ऐसा कि जिसकी हर हार जीत में शुमार हो। कवि समय का ईमानदार चित्रगुप्त होता है। सबका हिसाब रखने वाला। सबकी बहीखाता लिखने वाला। कवि

आखिर किसे माफ करता है? उस कवि को भी नहीं जो बस्ती की कविता को बाजार की वस्तु बनाने की साँठगाठ करता है। एक वही तो है जिसका अटूट विश्वास है- बस्ती और बाजार के सरोकार कभी एक नहीं हुआ करते। वह अपने कबीले के उस सदस्य को भी नहीं बख्शता, जो अपनी कविता की चमक घटने के भ्रम में दूसरी कवि को उपेक्षित बीहड़ में छोड़ आता है। एक कवि को इससे अधिक क्या तकलीफ होगी जो अपने जैसों से रूठ कर बिरादरी से खुद को निर्वासित कर लेता है। क्षुब्ध मन से निंदा प्रस्ताव रखते हुए कि-

भूल जाओ कि वह जनपद का कवि है
गूँज रहा है उसके स्वर से दिग-दिगन्त है
मरने दो उसको दूर देश में पतझड़ में
तुम सब चहको भड़ुओ तुम्हारा तो
हर दिन बसन्त है।

चारों तरफ सुनसान से घिरे उस कवि के बारे में और कितना कहा जाये जिसे यह पूरा भान हो कि-

झंडे जो मैंने उठाए
नारे जो मैंने लगाए
गीत जो मैंने गाए
सब थे दूसरों के बनाए।

यह आत्मविश्वास ही कवि की उपस्थिति को अमरत्व प्रदान करता है जिससे चारों तरफ बिखरे पड़े सुनसान में रहते हुए अविराम बातें करता रहता है -

फिर शुरू होती हैं बातें अविराम
कलह और प्रेम की दुनिया ही है ऐसी
खत्म नहीं होता इसका धागा ।
कोई फिर चिट्ठी लिखता है
ढूँढता है किसी खो गए का पता।

अपने सुनसान और निर्वासन में कवि अपनी कविता में पानी से भरे झागल को संभाले रखता है, शायद इसलिए कि वे थके-हारे लोग लौटें तो प्यास मिटा सकें, सूखे की मार से जो कभी गाँव से उखड़ गये थे।

◈ ◈ ◈

एफ-3, आवासीय परिसर, छत्तीसगढ़ माध्यमिक शिक्षा मंडल, पेंशनवाड़ा, रायपुर, छत्तीसगढ़-492001।
मो.-94241-82664, ईमेल-srijangatha@gmail-com

बाल श्रमिक समस्या एवं भारतीय संस्कृति

● डॉ० वीणा कुमारी

अतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में बाल श्रमिक जैसी सामाजिक समस्या का जन्म औद्योगीकरण का परिणाम है। कार्ल मार्क्स ने औद्योगीकरण के दुष्परिणामों के संदर्भ में 'अलगाव' की चर्चा की है। अपने सिद्धान्त की व्याख्या में इनका कहना था कि औद्योगीकरण की प्रतिस्पर्द्धा ने मजदूरों को और छोटे उद्योगपतियों में व्यवस्था से विक्षिप्तता ला दी है। बाजार व्यवस्था से अपने आपको समायोजित करने हेतु तथा व्यापार में अत्यधिक मुनाफे के उद्देश्य से बाल श्रमिकों को प्रलोभन देकर बहला फुसलाकर नियोजित किया जाता है।

भारतीय संस्कृति का विकास व्यक्ति और समाज को सुसंस्कृत बनाने की दृष्टि से हुआ है। इसके प्रत्येक सिद्धान्त, आदर्श, विधि-विधान एवं जीवन शैली की रचना इसी उद्देश्य से की गयी है। भारतीय संस्कृति से उपजे मुहावरें, लोकोक्तियाँ एवं विद्वानों के आनुभाविक विचार तथा दोहे-प्रवचन को ही आदर्श मानकर यहाँ की जीवन शैली विकसित हुई। ज्ञानार्जन हेतु गुरूकुल में जाना, भिक्षाटन करना, गृहस्थ जीवन में आर्थिक सामर्थ्य नहीं रहने पर भी दूसरों से मांगकर पर्व-त्योहारों का आयोजन करना तथा जीवन के अंतिम काल में संन्यासी बनकर भीख मांगकर जीवन यापन करना, नैतिक कर्त्तव्य के अंतर्गत माना जाता था। वर्णों में विभक्त समाज में दान लेने एवं दान देने की प्रथा थी, समाज का एक वर्ग का जीवन यापन इसी वृत्ति पर आधाारित था। समाज में प्रचलित यजमानी प्रथा भी कालांतर में विघटित होकर एक विचित्र स्वरूप ले लिया है।

कृषक समाज में छोटे बच्चें अपने खेतों में काम करते थे तथा कृषि भूमि के अभाव में दूसरे के खेतों में मजदूरी भी करने में अपने माता-पिता का हाथ बँटाते थे। बालकों द्वारा श्रम जीवन-यापन करने का यह प्रचलन उन दिनों सामान्य मान्यता का रूप ले लिया था। बाल श्रम जैसी सामाजिक समस्या इसी सामाजिक पृष्ठभूमि में कालान्तर में अर्थाभाव के कारण अवतरित हुआ।

आमतौर पर बालक कहने से स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों का बोध होता है प्राय: जिनकी उम्र सीमा

12–16 वर्ष तक का होता है। किसी भी देश की भावी प्रगति पूर्णरूप से नई पीढ़ी पर निर्भर करती है। किसी भी राष्ट्र की आर्थिक और भौतिक समृद्धि चिरस्थायी नहीं होगी यदि उसकी नई पीढ़ी गुणवत्तायुक्त न हो। इसके विपरीत बाल–श्रम आज सम्पूर्ण विश्व में एक भयंकर रोग बन चुका है जो कमोवेश सभी राष्ट्रों की ज्वलंत समस्या है। यद्यपि विकसित देश तो इस समस्या पर लगभग काबू पाने में समर्थ हैं लेकिन विकासशील देश आज भी इस समस्या से जर्जर और पीड़ित हैं। भारत में लड़के एवं लड़कियों की एक बड़ी आबादी श्रमिक के रूप में काम कर रही है। यूनीसेफ के एक रिपोर्ट में बाल–श्रमिकों की उम्र–सीमा 14 वर्ष निर्धारित की गई है।[1]

अतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में बाल श्रमिक जैसी सामाजिक समस्या का जन्म औद्योगीकरण का परिणाम है। **कार्ल मार्क्स** ने औद्योगीकरण के दुष्परिणामों के संदर्भ में 'अलगाव' की चर्चा की है।[2] अपने सिद्धान्त की व्याख्या में इनका कहना था कि औद्योगीकरण की प्रतिस्पर्द्धा ने मजदूरों को और छोटे उद्योगपतियों में व्यवस्था से विक्षिप्तता ला दी है। बाजार व्यवस्था से अपने आपको समायोजित करने हेतु तथा व्यापार में अत्यधिक मुनाफे के उद्देश्य से बाल श्रमिकों को प्रलोभन देकर बहला फुसलाकर नियोजित किया जाता है। **आर0 के0 मर्टन** ने अपने 'एकोनोमी' के सिद्धान्त में एक ऐसे प्रतिमानहीनता की चर्चा की है जिसमें व्यक्ति या समाज द्वारा स्वीकृत सांस्कृतिक लक्ष्यों को तो स्वीकार किया जाता है लेकिन वह संस्थागत साधनों को काम में नहीं लेता।[3] बाल अपराध और बाल श्रमिकों की समस्या इसी श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। इंगलैण्ड में 1601 में कानून द्वारा यह आदेश दिया गया कि भीखमंगे बालकों को किसी भी व्यवसाय में नियोजित कर देना चाहिए। अत: मालिकों के लिए यह आम बात हो गयी कि वे कार्य भवनों में जाते थे और भीखमंगे बालकों की टोली को कारखानों में काम में लगा देते थे।[4] इन बालकों को कारखानों में ले जाया जाता था और 12–16 घंटें तक काम लिया जाता था। इंगलैण्ड में श्रम कानून पास हो जाने के बाद बच्चों को काम पर नहीं लगाया जाने लगा।

भारतीय संदर्भ में बाल श्रम को एक सामाजिक समस्या के रूप में विश्लेषण करने से पूर्व इसकी अवधारणा को विश्लेषण करना आवश्यक प्रतीत होता है। **तेजस्कर पाण्डेय एवं संगीता पाण्डेय** की पुस्तक 'भारत में सामाजिक समस्याएँ' में भी भारत में बाल श्रमिकों को निम्न भागों में बाँटा गया है जिसका विवरण इस प्रकार है–

(1) वैधानिक बाल श्रमिक– वैधानिक रूप में बाल श्रमिकों के अन्तर्गत वे ही मजदूर आते हैं जो न्यूनतम आयु से अधिक हैं और वयस्क नहीं हैं। कारखाना अधिनियम 1948 के अनुसार 14 वर्ष से 15 वर्ष के श्रमिकों को बालक तथा 15 वर्ष से 18 वर्ष की आयु को किशोर कहा जाता है। 14 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति की नियुक्ति निषिद्ध है। अत: उनको बाल श्रमिक भी नहीं कहा जाता। खाद्यानों में 15 से 16 वर्ष के मजदूरों

को बाल श्रमिक कहा जाता है। बागानों में 12 से 15 वर्ष तक के व्यक्तियों को बाल मजदूर कहा जाता है।

(2) अवैधानिक बाल श्रम-यह श्रेणी बहुत विस्तृत है। इसके अंतर्गत असंगठित उद्योगों में लगे हुए बच्चें, खेतिहर मजदूर तथा वे सब बच्चें आते हैं जो गैर कानूनी ढंग से कारखानों, खदानों तथा बगानों आदि में अधिक उम्र दिखाकर भर्ती कर लिये जाते हैं। श्रमशास्त्र में मुख्यत: वैधानिक बाल श्रमिकों की समस्याओं पर ही विचार किया जाता है।[5]

समाजशास्त्रियों ने बाल श्रमिक शब्द की व्याख्या दो तरह से की है- (क) एक आर्थिक व्यवसाय के रूप में (ख) सामाजिक बुराई के रूप में। प्रथम के संदर्भ में बाल श्रमिक आर्थिक योजना में लाभप्रद रोजगार की ओर इंगित करता है। जिससे परिवार की आय वृद्धि होती है। दूसरे संदर्भ में बाल श्रमिक उन बुराईयों या शोषणों की ओर इंगित करता है जो कि बालकों को रोजगार में जबरन लगाने के कारण पनपते हैं। बाल श्रमिकों की रोकथाम हेतु अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, स्वयंसेवी संस्थाओं तथा वैधानिक कानूनों के द्वारा अनेक प्रयत्न किये जा रहे हैं। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और बचपन बचाओ आंदोलन के कार्य कर्त्ताओं द्वारा इस समस्या के रोकथाम के लिए अनेक प्रयास किये गये जो सार्थक सिद्ध हुए हैं।

नोवेल पुरस्कार विजेता कैलाश सत्यार्थी ने अपना **बचपन बचाओ आन्दोलन** के अंतगर्त कहा है कि जबतक भारत का अंतिम बच्चा बाल श्रम से मुक्त नहीं हो जाता है तबतक मैं यह आंदोलन जारी रखूँगा। पटना में 11 मार्च 2008 को बचपन बचाओ आंदोलन के धावा दल द्वारा नगर में दो जगहों पर छापा मारकर 7 बच्चों को मुक्त कराया गया। बच्चों को काम करवाने वाले दुकान मालिकों से जुर्माना वसूली के लिए नोटिस जारी किये गये। श्रम अधीक्षक द्वारा बच्चों को नियोजित करने वाले ताज बेकरी हाउस तथा पंकज स्वीट्स से क्रमश: 80,000/- और 60,000/- रुपये जुर्माने के रूप में वसूले गये।[6]

संयुक्त राष्ट्र संघ के एक रिपोर्ट के मुताबिक विश्व का हर 8वाँ बच्चा बाल श्रमिक है और भारत में इसकी संख्या पूरे विश्व में सबसे ज्यादा, डेढ़ करोड़ है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 2002 में एक विशेष अधिवेशन बुलाकर पूरे विश्व में संक्रामक रोग की तरह फैली बाल श्रम की समस्या पर विचार विमर्श किया गया। इस अधिवेशन में बताया गया कि बाल श्रमिक शोषण के शिकार हैं, इनका दुरूपयोग हो रहा है, वे सड़कों पर रहते हैं और उन्हें सौगात मिलती है तो एड्स की।[7] बाल श्रम कानून के द्वारा 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों से घरों एवं होटलों, ढाबों एवं विश्राम गृहों में काम लेना दण्डनीय अपराध है।

भारतीय समाज में बालश्रम की समस्या के पनपने का मूल कारण गरीबी है। अधिकांश माता-पिता अपने बच्चों को कम उम्र में अपने काम-धंधो में हाथ बँटाने के लिए

लगा देते हैं या फिर आस-पास के खेतों अथवा उद्योग धंधों में काम करने के लिए भेज देते हैं। बिहार में बीड़ी उद्योग, ईंट भट्ठा उद्योग, रेशमी वस्त्र उद्योग, साज-शृंगार उद्योग, बल्ब उद्योग, परिवहन उद्योग, होटल उद्योग और खाद्यान की मंडियों में बड़ी संख्या में बाल मजदूर कार्यरत हैं। इसके अलावे रेलवे स्टेशनों और बस अड्डों पर बच्चे काम करते देखे जाते हैं। अधिकांश बाल मजदूरों का संबंध वैसे परिवारों से रहता है जिन्हें दो जून की रोटी तक सही रूप से नसीब नहीं होता है। अब तो बिहार में बड़े श्रमिकों की तरह बाल श्रमिकों का भी पलायन हो रहा है। इस दिशा में वैसे लोग भी सक्रिय हैं, जो बच्चों को बहला-फुसलाकर बिहार से बाहर खतरनाक उद्योगों में लगा देते हैं।

बिहार सरकार ने बाल श्रमिक की समस्या को अत्यंत गंभीरता से लिया और कानून को अत्यधिक प्रभावकारी बनाने हेतु 2007 में बिहार राज्य बाल श्रमिक आयोग का पुनर्गठन किया। नीतीश कुमार की सरकार द्वारा पटना महानगर को बाल श्रमिकों से मुक्त कराने के लिए धावा दल का गठन किया गया। प्रत्येक धावा दल में श्रम अधीक्षक के अलावा एक महिला पदाधिकारी, एक स्वयंसेवी संस्था के प्रतिनिधि तथा दो श्रम प्रवर्तन पदाधिकारी को सम्मिलित किया गया। श्रम संसाधन विभाग द्वारा ग्राम-पंचायत, प्रखंड एवं जिला को बाल श्रमिक घातक प्रथा से मुक्त कराने हेतु किये गये प्रयासों के लिये विशेष पुरस्कारों की भी घोषणा की गई। दैनिक समाचार पत्र प्रभात खबर में 'बदलना होगा सोच' विषय से लिए गए प्रो0 यशपाल के एक निबंध में विस्तार पूर्वक आँकड़े देकर इस समस्या पर प्रकाश डाला गया है। जिसका कुछ महत्त्वपूर्ण अंश यहाँ उद्धृत करना चाहूँगी। बिहार में बाल श्रमिकों को सरकार द्वारा न केवल उनके नियोजकों द्वारा मुक्त कराया गया बल्कि उन्हें शिक्षित करने के लिए भी अनेक प्रयास किये गये हैं। राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के अंतर्गत कुल 24 जिलों में बाल श्रमिकों के पुर्नवास हेतु विशेष विद्यालय चलाये गये हैं। बिहार में वर्तमान में बाल श्रमिकों के लिये 1462 विशेष विद्यालय संचालित हैं जिसमें बाल श्रमिकों की संख्या 79826 है।[8] सरकार द्वारा राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के संचालन की देख-रेख के लिए एक शिकायत सेल का भी गठन किया गया है। मुजफ्फरपुर जिला में विशेष बाल श्रमिक विद्यालय संचालित किये गये हैं। ये विद्यालय परियोजना निदेशक के पर्यवेक्षण में स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा संचालित किये जा रहे हैं। बिहार सरकार द्वारा किये गये इन्हीं प्रयासों के संदर्भ में प्रसिद्ध शिक्षाविद् प्रो0 यशपाल का कहना है कि बिहार में प्राथमिक शिक्षा की तस्वीर बदल रही है। 2007-2008 के दौरान देश भर के किसी राज्य के तुलना में बिहार में 6-14 वर्ष की आयु के बच्चों के नामांकन दर में सर्वाधिक वृद्धि हुई है। इनका कहना था बिहार का समाज स्वस्थ है इसलिए 2020 तक बिहार भी शिक्षा को लेकर साकारात्मक सोच जरूरी है।[9] बाल श्रम की समस्या के उन्मूलन हेतु केन्द्र सरकार, राज्य सरकार तथा अंतराष्ट्रीय संगठनों द्वारा अनेक कानून पारित किए गए हैं।

किन्तु वास्तविकता में इसका क्रियान्वयन सही तरीके से नहीं हो पा रहा है। मेरी समझ में इन कानूनों के क्रियान्वयन में एक बाधाा हमारी पारंपरिक सास्कृतिक सोच और दिशाविहीन ज्ञान है। बाल श्रमिक के अभिभावकों की सोच में जबतक बदलाव नहीं आयेगा तबतक सरकारी नियम का क्रियान्वयन ठीक से नहीं हो पायेगा। इसके लिए एक ठोस सामाजिक जागरूकता अभियान या जन-आन्दोलन चलाने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. रीना बनर्जी, मजदूरी एवं काम बाल श्रमिकों के नाम, आज दैनिक पटना 01.05.2001
2. टर्नर जोनाथन, द स्ट्रक्चर ऑफ सोशियोलॉजिकल थ्योरी, रावत पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, पेज नम्बर-129
3. दोषी एवं जैन, समाजशास्त्र नई दिशाएँ, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली पेज नम्बर-356
4. ए० के० झा०, अप्रकाशित शोध प्रबंध, दरभंगा सदर प्रखंड़ के अंतर्गत लघु उद्योगों में कार्य कर रहे बाल श्रमिकों का सामाजिक व्याधिकीय अधययन, एल० एन० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा/2012
5. तेजस्कर पाण्डेय एवं संगीता पाण्डेय, भारत में सामाजिक समस्याएँ, पेज नम्बर-179, टी० एम० सी०-6, हिन्दुस्तान, पटना, 11 मार्च 2008
7. बन्दना मिश्रा, दैनिक जागरण, 11अगस्त 2006

◈◈◈

वरीय रिसर्च फेलो, समाजशास्त्र विभाग, ए.एन.कॉलेज, पटना

सदस्यता फार्म

साहित्य यात्रा
साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

नाम .....

पता .....

.....

.....

फोन ..... मोबाइल ..... ई-मेल .....

एक वर्ष: ₹ 300

तीन वर्ष: ₹ 750

दिनांक: .....

हस्ताक्षर: .....

शुल्क **'साहित्य यात्रा'** के नाम पर इस पते पर भेजें-

'अभ्युदय'

ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001

बिहार

हिन्दी राम काव्य परम्परा में रामचरित मानस का स्थान

● उमेश प्रसाद

यद्यपि हिन्दी में राम काव्य के आदि कवि तुलसी दास माने जाते हैं। किन्तु फिर भी तुलसीदास के पहले हिन्दी में राम काव्य का बीजारोपण हो चुका था। तुलसीदास के पहले पन्द्रवीं सदी के शुरू में ग्वालियर के विष्णुदास नामक एक कवि थे। उन्होंने 'बाल्मीकि रामयण' का 'भाषा वाल्मीकि रामायण' शीर्षक से हिन्दी में अनुवाद किया था। इनके अलावे ईश्वर दास ने 'भरत मिलाप' और 'अंगदपैंज' नामक दो ग्रंथों की रचना की। इन दो रचनाओं में रामकथा का वर्णन आया है। उपर्युक्त रचनाओं की तुलसी के पहले की रचनाएँ मानी जाती है। तुलसीदास के पहले सूरदास के 'सूरसागर' नामक गंथ में भी दशावतार का प्रसंग आया है। इस प्रसंग में राम-कथा का वर्णन किया गया है।

वस्तुतः हिन्दी साहित्य में राम-कथा को विश्वव्यापी बनाने का काम तुलसीदास ने किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने राम को श्रेष्ठ ब्रह्म के पूर्ण अवतार के रूप में स्थापित करने श्लाघनीय कार्य किया है। राम भक्ति काव्य के अनेक सम्प्रदाय हैं जो निम्नलिखित है-

1. रसिक सम्प्रदायः रसिक सम्प्रदाय के जनक अग्रदास जी है। इन्होंने अपने जीवन काल में चार ग्रंथों की रचना की है जो क्रमशः है- हितोपदेश उपाखान बावनी, ध्यान मंजरी, राम ध्यान मंजरी और कुण्डिलयाँ।

राम भक्ति काव्य में रसिक सम्प्रदाय का अर्थ है- राम और सीता के श्रृंगारिक लीलाओं का रसयुक्त वर्णन किया जाता है। जहाँ तुलसी दास ने राम को मर्यादित पुरुषोत्तम राम का वर्णन किया गया है, वहीं इस सम्प्रदाय के भक्त माधुर्य भाव से राम की उपासना का वर्णन किया गया है। संस्कृत में रचित

तुलसीदास ने सबसे पहले अनेक प्रकार से भगवान के जन्म हेतुओं का विवेचन करके हिन्दू समाज को विश्वास दिलाया कि प्रभु अवतार लेकर तुम्हारा कल्याण अवश्य करेंगे। उन्होंने उस समय की जनता के आश्वस्त किया कि भगवान जन्म लेकर तुम लोगों का उद्धार जरूर करेंगे।

'आनन्द रामायण' में राम और सीता के सम्भोग का खुले शब्दों में वर्णन किया गया है। तमिल की प्रसिद्ध रचना 'कम्बन रामायण' में राम और सीता के प्रेमोद्‌गार को साफ-साफ शब्दों में व्यक्त किया गया है। कबीर जैसे निर्गुण ब्रह्म के उपासक कवि राम को अपना 'भरतार' और स्वयं दुल्हिनियाँ मानने के लिए बाध्य होना पड़ा है। यद्यपि तुलसी दास ने भी अपनी पुस्तक 'गीतावाली' के उत्तरकाण्ड में रसिक भाव के प्रति आसक्त हो उठे थे। किन्तु वह है बड़ा ही मर्यादित। स्वसुखी सम्प्रदाय के आदि संस्थापक रामचरण दास ने नारी भेष धारण कर लाल साहब 'राम' को अनेक प्रकार की रसिक चेष्टाओं से प्रसन्न करने .... साध में तल्लीन रहे हैं। तत्सुखी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक जीवाराम ने राम और सीता की उपासना 'युगल प्रिया' के रूप में की है।

हिन्दी रामकाव्य परम्परा के अन्तर्गत अनेक कवि हुए हैं जैसे- विष्णुदास कृत 'भाषा वाल्मीकि रामायण, ईश्वरदास कृत 'भरत मिलाप' और 'अंगदपैज'। हालाँकि भरत-मिलाप एक विवादित ग्रंथ है। क्योंकि प्राचीनतम प्रतियों में रचयिताओं के नाम में पर्याप्त भेद मिलता है। केशवदास कृत 'रामचन्द्रिका' एक महत्त्वपूर्ण कृति है। रामचरित मानस की प्रतिद्वन्द्विता में रामचन्द्रिका की रचना एक ही रात में की गई। वे रामचन्द्रिका नामक ग्रंथ पर निहंगम दृष्टि डालते हुए शुक्लजी ने इसे छन्दों का अजायब घर कहा गया है। संवाद की दृष्टि से यह ग्रंथ एक अनूठा ग्रंथ है। रामचन्द्रिका को रामचरितमानस जैसी लोकप्रियता प्राप्त नहीं हुई है। सेनापति कृत 'रामायण वर्णन' और 'राम-रसायन वर्णन' में राम का वर्णन किया गया है। महाराज पृथ्वीराज ने 'दशरावउत' नामक ग्रंथ की रचना की है। इस ग्रंथ में रामकथा का वर्णन हुआ है। प्राणचंद चौहान ने 'रामायण महानाटक' की रचना की है। इस ग्रंथ में राम की कथा संवाद शैली में लिखी गई है। अग्रदास कृत 'ध्यान मंजरी' और 'रामध्यान मंजरी' में भी रामकथा का वर्णन किया गया है। नाभादास कृत रामचरित संग्रह में रामकथा का वर्णन आया है। प्रियादास ने भक्तमाल नामक ग्रंथ की रचना की है। यह कवित्त-सवैयों में लिखा गया है। महाराज विश्वनाथ सिंह राम-भक्ति शाखा के अन्तिम कवि के रूप में जान जाते हैं। इन्होंने 'आनन्द रघुनन्दन' में रामकथा का वर्णन हुआ है।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त भूपति, हृदयराम, लालादास, जीवाराम, जानकी चरण, बनारस दास आदि राम भक्ति शाखा के कवि माने जाते हैं।

यद्यपि राम काव्यधारा का तीव्र प्रवाह भक्ति काल में ही हुआ है, किन्तु आज भी इसका स्रोत सूखा नहीं है। मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' में तथा हरिऔध ने 'वैदेही वनवास' में रामकथा को नीवन रूप प्रदान किया है।

हिन्दी रामकाव्य परम्परा में तुलसीकृत 'रामचरितमानस' एक लोक प्रसिद्ध रचना है। इस प्रसिद्ध ग्रंथ की ख्याति विश्वस्तरीय है। रामचरितमानस की रचना संवत् 1631 में प्रारंभ की गई। इसकी भाषा अवधि है। इस लोक प्रसिद्ध ग्रंथ में सात काण्ड हैं। इन सात खण्डों में राम के जन्म से लेकर रामराज्य की स्थापना तक की कथा है। इस ग्रंथ में

दोहा-चौपाई के अलावे यत्र-तत्र अन्य छंदों का भी प्रयोग किया है। रामचरित मानस में लोकव्यापी संदेश निहित है। रामचरितमानस एक सफल महाकाव्य है। इसमें तुलसीदास ने अपना समन्यवादी दृष्टिकोण अपनाया है। रामचरितमानस की प्रबंध कल्पना पर विचार के उपरान्त हम पाते हैं कि रामजन्म से लेकर राम-रावण युद्ध एवं राम के अयोध्या लौटने तक सम्पूर्ण कथा एक निश्चित क्रम में प्रस्तुत की गई है। इस महाकाव्य में महान उद्देश्य एवं लोकमंगल की महान अभिव्यंजना हुई है, जिसके कारण यह कृति 'महाकाव्य' की श्रेणी में आती है और इसे महाकाव्य का गौरव प्राप्त है।

रामचरितमानस में चित्रकूट सभा का महत्त्व- रामचरितमानस महाकाव्य में 'चित्रकूट सभा' का वर्णन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। राम और भरत का मिलाप, कैकेकी का आत्मग्लानि प्रकट करना सभा के द्वारा राम को अयोध्या वापस चलने का आग्रह करना आदि-आदि मार्मिक वर्णन के कारण चित्रकूट सभा का अत्यन्त महत्त्व है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार- चित्रकूट की उस सभा की कार्रवाई क्या थी, धर्म के एक-एक अंग की पूर्ण और मनोहर अभिव्यक्ति थी, रामचरितमानस में वह सभा एक आध्यात्मिक घटना है। धर्म के इतने स्वरूपों की एक साथ योजना, हृदय की इतनी उदात्त वृत्तियों की एक साथ उद्भावना, तुलसी के ही विशाल 'मानस' में सम्भव थी। यह सम्भावना उस समाज के भीतर बहुत से भिन्न-भिन्न वर्गों के समावेश द्वारा संघटित की गई है। राजा और प्रजा, गुरू और शिष्य, भाई और भाई, माता और पुत्र, पिता और पुत्री, श्वसुर और जामातृ, सास और बहू, क्षत्रिय और ब्राह्मण, ब्राह्मण और शुद्र, सभ्य और असभ्य के एक-दूसरे के व्यवहारों का उपस्थिति प्रसंग के धर्म-गांभीर्य और भावोत्कर्ष के कारण, अत्यन्त मनोहर रूप प्रस्फुटित हुआ है। अपनी प्रबल इच्छाओं को लिए हुए लोग सभा में बैठते हैं, पर उस सभा में बैठते ही धर्म के स्थिर और गम्भीर स्वरूप के सामने उनकी व्यक्तिगत इच्छाओं का कहीं पता नहीं रह जाता है। चित्रकूट सभी शील और कर्त्तव्य का संगम है जहाँ धर्म रूपा सरस्वती सामने हो जाती हैं। मुनि वशिष्ठ के अनुसार उसमें लोकमत साधुमत एवं नृपनय की त्रिवेणी वही है-

दोहा: *भरत विनय सादर सुनिऊ करिअ विचारू बहोरि।*
करब साधुमत, लोकमत नृपनय निगम निचोरि।।[1]

अत: रामचरितमानस में चित्रकूट सभा का महत्त्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

रामचरित मानस में सामाजिक एवं पारिवारिक आदर्श-रामचरित मानस में वर्णित सामाजिक व्यवस्था वर्णाश्रम धर्म के आधार पर आधरित है। रामचरित मानस में प्रत्येक व्यक्ति मर्यादाओं का पालन करता है, मुनि वशिष्ट एवं ऋषि विश्वामित्र के लिए राजा दशरथ अपना आसन छोड़कर खड़े होते हैं और उनकी अगवानी हेतु द्वार तक जाते हैं। इसी प्रकार ऋषि विश्वामित्र के आने का समाचार सुनकर राजा जनक उनसे मिलने वाटिका पर पहुँचते हैं।

मखशाला में जब दर्शकों की भीड़ का दबाव बढ़ने लगता है, तब राजा जनक लाठीचार्ज का आदेश न देकर अपने कर्मचारियों से कहते हैं कि सबको यथायोग्य स्थान पर बैठाने की व्यवस्था कर दो।

चौपाईः *''तुरन्त सकल लोगन्ह पहिं जाहू।*
आसन उचित देहु सब काहू। –बालकाण्ड पृ०–195

दोहाः *कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह बठाईनर चारि।*
उत्तम मध्यम नीच लघु निज–निज थल अनुहारि।''

–बालकाण्ड, दोहा संख्या–240 पृ०–195

गुहनिषाद वशिष्ठ के पाँव पड़ता है और उनसे दूर हटने का प्रयत्न करता है, परन्तु वह उसको अपनी ओर खींच कर सीने से लगा लेते हैं।

केवट राम से उतराई नहीं लेता है, क्योंकि वह निर्वासित हैं। चौदह वर्ष बाद वापसी का समय हँसी–खुशी का समय होगा, तब वह उतराई स्वीकार कर लेगा–

चौपाईः *''फिरती बार नाथ जो देवा, सो प्रसाद मैं सिर धरू लेवा!!''*[4]

–अयोध्या कांड पृ०–352

संक्षेप रूप में समाज की व्यवस्था लोकमत, साधुमत शास्त्र एवं राजनीति के सामंजस्य द्वारा निर्धारित नीतियों पर चला करती है।

पारिवारिक मर्यादाओं को जानने के लिए श्रीराम का यह कथन पर्याप्त होना चाहिए–

चौपाईः *''सुनु जननी सोई सुतु बड़ भागी।*
जो पितु मातु बचन अनुरागी।।
तनय मातृ पितु निहारा।
दुर्लभ जननि सकल संसारा।।''[5]

–रामचरितमानस, अयोध्या कांड, पृष्ठ–311 चौपाई सं0– 4

परिवार में नारी का स्थान सर्वोच्च था। कौशल्या देवी श्रीराम से कहती हैं–

जो केवल पितु आयसु ताता। तो जनि जाहु जनि बड़ माता।।

रावण अपनी पत्नी मंदोदरी का कितना सम्मान करता है–यह कहने की आवश्यकता नहीं है। उससे जिस किसी ने सीता को वापस भेजने की बात कही– उसको रावण दंड देता है। परन्तु मंदोदरी को हँसकर गले लगा लेता है और वह सभा में चला जाता है। सीता रावण के वश में रहती है। फिर भी रावण उससे बलात्कार करने की बात भी नहीं सोचता है।

तुलसीदास ने रामचरितमानस में भरत और लक्ष्मण चरितों के माध्यम से भ्रातृत्व का श्रेष्ठत्तम आदर्श प्रस्तुत किया है।

रामचरितमानस में युगबोध–तुलसीदास के समय में हिन्दू समाज की आस्थाएँ डिगने लगती है तथा शासक अपने कुशासन के द्वारा प्रजा को दण्डित करती है। धर्म के

नाम पर पाखण्ड का प्रभाव तेजी से बढ़ता जाता है। निर्गुण पंथीमत जनता को कर्त्तव्य विमुख करता है।

तब तुलसीदास ने सबसे पहले अनेक प्रकार से भगवान के जन्म हेतुओं का विवेचन करके हिन्दू समाज को विश्वास दिलाया कि प्रभु अवतार लेकर तुम्हारा कल्याण अवश्य करेंगे। उन्होंने उस समय की जनता के आश्वस्त किया कि भगवान जन्म लेकर तुम लोगों का उद्धार जरूर करेंगे।

उन्होंने अनेक प्रकार के दार्शनिक सिद्धान्तों, सगुण निपुण, शिव-विष्णु के मध्य समन्वय स्थापित करके वितण्डावाद को बहुत कुछ समाप्त किया।

चौपाईः *''जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।*
सो नृप अवसि नरक अधिकारी'' [6]

-अयोध्याकांड, पृष्ठ-330, चौपाई सं-3

यह कथन कहकर रामचरितमानस में अन्यायी शासकों को चेतावनी दी। उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से यह भी कहा कि श्रीराम ने निर्वासित होकर भी दिग्विजयी शत्रु को उसके घर घुसकर परास्त किया, तुम लोग तो करोड़ों की संख्या में हो। एक ही राम का यह संकल्प किसको शत्रु से मोर्चा लेने के लिए उत्साहित नहीं कर देगा?

''सीता हरन पिता सन कहेहु तात जनि जाइ।
जो मैं राम तो कुल सहित कहिय दसानन आइ।।'' [7]

तुलसीदास ने कवितावली में अनेक छंदों में अपने युग का यथार्थवादी एवं सजीव चित्रण किया।

खेती न किसान को भिखारी को न बलि।
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान, सोचबस,
कहै एक एक न सो, कहाँ जाई, का करी।
बेदहु पुरान कही, लोकहु बिलोकियत,
साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करो।
दारिद दसानन दबाई दूनी दीन बँधू,
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी।।

-तुलसीदास, कवितावली

रामचरितमानस में लोक मंगल की भावना-गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस में लोक मंगल की कामना की है। उन्होंने भगवान के अवतार का हेत बताते हुए कहते हैं कि दुष्टों को मारकर ही लोक मर्यादा की रक्षा की जा सकती है। इसकी स्थापना के लिए ही भगवान अवतार लेते हैं ताकि अधर्म के स्थान पर धर्म की स्थापना हो सके।

श्रीराम के अवतार का भी हेतु यही है और यही करते हुए दिखाई देते है-

दोहाः *''सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीनही रघुनाथ।*
नाम उधारे अमित-खल बेद विदित गुन गाथ।।''

रामचरितमानस, बालकाण्ड पृष्ठ सं०-41 दोहा सं०-24

राक्षसों द्वारा भक्षण किए गए मुनिजन के अवशेषों को देखकर राम प्रतिज्ञा करते हैं कि

दोहाः *''निसिचर हीन करऊँ महि मुज उठाइ पन कीन्ह।*
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाहि जाइ सुख दीन्ह।।''[10]

रामचरित मानस, अरण्यकांड, पृष्ठ सं०-514 दोहा संख्या-9

श्रीराम दुष्टों का बध करते हैं, उनको निजधाम भेजते हैं और उसके उचित उत्तराधिकारी को राजसत्ता सौप देते हैं। वह जीते हुए किसी भी राज्य को अयोध्या के साम्राज्य का अंग नहीं मानते हैं। यहाँ तक कि वह लंका का राज्य भी विभीषण को सौंप देते हैं।

अन्त में तुलसीदास रामचरितमानस के उत्तरकांड में यह वर्णन करते हैं कि राज्य कल्याणकारी हो। इसीलिए वे कल्याणकारी राज्य के रूप में रामराज्य का वर्णन कर लोक मंगल की भावना को स्थायित्व प्रदान कर देते हैं।

रामचरितमानस में रामराज्य की कल्पना-कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की परिकल्पना आधुनिक चिन्तनधारा की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। इसे लक्ष्य कर अराजकतावादी- समाज की बात कही जाती है- ऐसा समाज जिसमें प्रत्येक नागरिक अपने कर्त्तव्य का पालन करे और शासन की आवश्यकता ही न पड़े। दूसरे शब्दों में कहा जाता है कि-That Government is the best which governs the least अर्थात् वह शासन श्रेष्ठ है जो न्यूनतम शासन (हुकूमत) करता है। गोस्वामी तुलसीदास के द्वारा कल्पित-रामराज्य ऐसा ही है-

दोहाः *''वरनाश्रम निज-निज धरम निरत बेद पथ लोग।*
चलहि सदा पावहि सुखहि नहीं भय सोक न रोग।।''[11]

रामचरित मानस, उत्तरकांड पृष्ठ संख्या-754 दोहा संख्या-20।

उस राज्य में किसी व्यक्ति को किसी प्रकार का कष्ट -अथवा दुःख नही था।

चौपाईः *''दैहिक दैविक-भौति-तापा। रामराज नहीं काहुहि ब्यापा।।*

x x x x x x

चौपाईः *''नहीं दरिद्र कोई दुःखी न दीना। नहीं कोई अबुध-न लच्छन हीना।।*

चौपाईः *''सब निर्दंभ-धर्मरत पुनि। नर अरु नारी चतुर सब गुनी।।*
सब गुनाय पंडित-सब ग्यानी। सब कृतग्य नहि कष्ट सयानी।।'' [12]

-रामचरितमानस, उत्तरकांण्ड, पृष्ठ-754 चौपाई से लेकर चार तक निष्कर्ष रूप में

दोहाः *''दंड जतिन्ह कर भेद जहाँ नतर्क नृत्य समाज।*
जीतहु मनहि सुविअ अरु रामचंद्र के राज।।''[13]

रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, पृष्ठ-755 दोहा-22

तुलसी का रामराज्य वास्तविक रूप में लोकतंत्र था।

लोकतंत्र के जितने आदर्श होते हैं, वे सभी आदर्श रामराज्य में सन्निहित हैं। अतः तुलसीदास के रामराज्य को एक कल्याणकारी राज्य के रूप में प्रस्तुत करने के परामर्श को गंभीरतापूर्वक सुनें-

चौपाईः *''नहीं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सुहाई*
सोई सेबक प्रियतम मम सोई। मम अनुशासन मानै जाई
जौ अनीति कछु भाखौ भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।''[14]

-रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, चौपाई-2, 3 पृष्ठ संख्या-770

यहाँ उल्लेख करने योग्य है कि वे लोकमत, साधुमत, वेदमत एवं राजनीति के संदर्भ में अपना निर्णय सुना दें।

रामचरितमानस में भक्ति भावना-जिस समय तुलसीदास का आविर्भाव हुआ उस समय एक ओर तो निर्गुणमार्गी संत अपनी सक्षम वाणी के द्वारा लोगों को जीवन और जगत में विरक्त होने का पाठ पढ़ा रहे थे और-दूसरी ओर-कृष्ण भक्त आचार्य एवं कवि अपनी संगीतमय वाणी के द्वारा प्रेम की धारा को बढ़ा रहे थे। ऐसे समय में एक ऐसे लोकनायक भक्त की आवश्यकता थी जो शासनानुमोदित हरिभक्ति की प्रतिष्ठा करके जनजीवन के लोकधर्म के माधुर्य के प्रति आकर्षित करे। गोस्वामी तुलसीदास ने इस आवश्यकता की पूर्ति की। गोस्वामी तुलसीदास के रचित महाकाव्य रामचरितमानस की ये पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

''श्रुति सम्मत हरि भक्ति पंथ संजुत विरतिविवेक।
जे परिहरहि विमोहवस कल्पहि पंथ अनेक।।''

भक्ति भावना के आवश्यक तत्व इस प्रकार है-

(क) इष्ट देव में अनन्त सौन्दर्य, अनन्त-शक्ति और अन्नत शील की प्रतिष्ठा। (ख) दैन्य (ग) पूर्ण समर्पण (घ) अनन्य प्रेम (ड़) निष्कामना (च) धर्म के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति।

तुलसीदास के प्रसिद्ध ग्रंथ रामचरितमानस और विनयपत्रिका में इन तत्त्वों का पूर्ण समावेश पाया जाता है। श्रीराम के सौन्दर्य का क्या कहना है। वे तीनों लोकों में प्राप्त सुन्दरतम वस्तुओं के सारतत्त्व द्वारा निर्मित हैं।

''नील सरोरूह तरुन अरुन बारिज नयन।[15]

-रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृष्ठ-18, चौपाई-3

दोहाः *नील सरोरूह नील मनि नील नीरधर श्याम।*
लाजहि तन सोभा निरखि कोटि सत काम।।[16]

-रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृष्ठ-130, दोहा-146

वे त्रिलोक एवं प्रकृति के समस्त तत्वों पर शासन करने वाले रावण का बध कर देते हैं। वे शीलवान इतने हैं कि लंका का राज्य विभीषण को देते हुए संकोच करते हैं कि इनके योग्य देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है।

विनयपत्रिका एवं दोहावली में अन्य तत्त्वों का वर्णन यथास्थान पाया जाता है। निष्कामना की स्थिति यह है कि तुलसी श्रीराम से प्रेम करते हैं, क्योंकि श्रीराम उन्हें अच्छे लगते हैं। भक्ति के बदले वह मुक्ति-भुक्ति कुछ नहीं चाहते हैं उनके आदर्श रामभक्त भरत यह वरदान माँगते हुए देखे जाते हैं-

दोहा: *''अरथ धरम न काम रूचि गति न चहउँ निरबान।*
जनम-जनम रति रामपद या बरदान न आन।।''[17]

-रामचरितमानस, अयोध्याकांड, पृष्ठ-421 दोहा-204

श्रीराम से उनकी एक ही याचना है, (रामचरितमानस) शील की प्राप्ति

''तुम अपनायो तब जनिहो जब मन फिरि परि है।"

तुलसी की भक्ति पद्धति के साथ लोकधर्म विनयपत्रिका का सामंजस्य है। उसमें कर्म, ज्ञान और उपासना का सुखद संयोग है। वे वेद विहित शास्त्र सम्मत तथा विरति एवं वैराग्य से युक्त है। उसके संदर्भ में जिस विरति या वैराग्य की चर्चा है, वह लोक कर्त्तव्यों से विमुख करने वाला वैराग्य नहीं है। वह परहित के प्रति प्रेरित करने वाला विवेकपूर्ण वैराग्य है। तुलसी द्वारा प्रतिपादित भक्ति ने किसका उद्धार नहीं किया है-

छंद: *''पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।*
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना।।
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अधरूप जे।
कहि नाम बारकतेषि पावन होहिं राम नामामि ते।।''[18]

-रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, पृष्ठ-846

तुलसी की भक्ति मानस संत-पद प्रदान करने वाली है-

भये सब साधु किरात किरातिनी,
राम दरस मति गई कलुषाई।

अत: यह कहना सभी जगह समीचीन है कि-

''भक्ति रस का जैसा परिपाक तुलसी में देखा जाता है, वैसा अन्यत्र नहीं।'' 19

-हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य शुक्ल

रामचरितमानस में तुलसीदास की काव्य दृष्टि- गोस्वामी तुलसीदास की काव्य दृष्टि के विषय में दो कथन सर्वविदित हैं-

(क) *''कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना।*
सिर धुनि गिरा लगत पछिताना।।'' [20]

-रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृष्ठ-30

जब कोई कवि किसी व्यक्ति की स्तुति अथवा गुणगान करता है, तो माता सरस्वती अपनी सिर पीट लेती है, उन्हें इस बात का पश्चाताप होती है कि मैंने ऐसे निराभिमानी को कविता करने प्रतिभा क्यों दी।

(ख) *''कीरति भनिति भूति भलि सोई।*
सुरसरिसम सब कहें हित होई।।'' [21]

–रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृष्ठ–32

कीर्ति और वैभव की भाँति वही कविता सार्थक होती है जो गंगा की भाँति सब का हित करे।

भरत के समान काव्य को भी सुगम अगम मंजु कठोर बताकर तुलसी ने कहा है कि उसमें गागर में सागर भरने का गुण हो और व्यंजना से युक्त हो। चित्रकूट की सभा में जनकजी भरत की वाणी को इन्हीं गुणों से युक्त बताते हैं।

शोधप्रज्ञ एवं डॉक्टोरलथेलोस्त्री अध्ययनरत्त

संदर्भ ग्रंथ

1. रामचरित मान – गीता प्रेस, गोरखपुर, अयोध्या कांड, दोहा संख्या–25 पृष्ठ संख्या–258
2. वही–वही – बालकांड, पृष्ठ संख्या–195
3. वही–वही – बालकांड–दोहा संख्या–204
4. वही–वही – अयोध्या कांड, संख्या–352
5. वही–वही – अयोध्या कांड, संख्या–311, चौपाई–4
6. वही–वही – अयोध्या कांड, पृष्ठ संख्या–330, चौपाई–3
7. कवितावली – तुलसीदास
8. रामचरित मानस – वही, बालकाण्ड, पृष्ठ संख्या–41, दोहा–24
9. वही–वही – अरण्यकाण्ड, पृष्ठ संख्या–514, दोहा–9
10. वही–वही – उत्तरकाण्ड, पृष्ठ–754, दोहा–20
11. वही–वही – रामचरित मानस उत्तरकाण्ड पृष्ठ संख्या–754 चौपाई संख्या 1 से लेकर 4 तक
12. वही–वही – उत्तरकाण्ड, पृ. सं.–755, दोह संख्या–22
13. वही–वही – उत्तरकाण्ड, पृष्ठ सं.–770
14. वही–वही – बालकाण्ड, संख्या–18
15. वही–वही – बालकाण्ड, पृष्ठ–130, दोहा सं.–146
16. वही–वही – अयोध्या कांड, पृष्ठ–421, संख्या–204
17. वही–वही – उत्तरकांड, रामचरितमानस, पृष्ठ संख्या–846
18. हिन्दी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
19. वही–वही – बालकाण्ड, पृष्ठ संख्या–30
20. वही–वही – बालकाण्ड–32

हिन्दी शिक्षक, प्लस 2, रामप्यारी उच्च विद्यालय, चिरैली, गया

आधुनिक युग में कबीर की प्रासंगिकता

● करुणा पीटर

कबीर का संघर्ष दलित तथा पीड़ित वर्गों के अस्तित्व का था। उनके क्रांतिकारी और विद्रोही रूप से तब भी समाज हिला था और आज भी स्पंदित होता है। जहाँ आज का मानव विलासिता और चकाचौंध से भ्रमित है, परेशान है, कुंठा का शिकार हो रहा है, युवाओं में आत्महत्या के दर में बेतहासा वृद्धि हुई है- ऐसे में कबीर की वाणी प्रकाश-पुंज बनकर हमें जीवन के वास्तविक सुख से परिचित कराने में कारगर है।

आधुनिक युग विज्ञान की चरम उपलब्धि का युग है। समस्त विश्व सिमट गया है। वैज्ञानिक प्रगति, द्रुत गति से हो रहे औद्योगीकरण तथा तकनीकी विकास के कारण मानव की सोच में बदलाव आया है। यही कारण है कि मनुष्य अधिक यांत्रिक हो गया है। यही कारण है कि मानवीय संबंधों की भावात्मकता क्षीण होती जा रही है। आज जहाँ मानव मात्र में धर्म के प्रति आस्था में कमी आयी है वहीं स्वार्थी तत्त्वों द्वारा धर्म का दुरुपयोग किया जा रहा है। स्वार्थपरता के कारण मनुष्य के चरित्र में कई प्रकार के विकार उत्पन्न हो गए हैं। डॉ० रामकिशोर शर्मा ने इस प्रसंग पर विचार करते हुए कहा है, ''चूँकि मनुष्य अपनी नियति का नियंता स्वयं बन गया है, इसलिए जब उसे मनोवांछित सुख-सुविधा नहीं मिल पाती तो उसके मन में कुंठा, निराशा आदि अभावमूलक वृत्तियाँ घर कर जाती है।''[1]

आज समाज में चारों तरफ अराजकता, धार्मिक विषमता, जातिवाद, छूआछूत की भावना, बाह्य आडम्बर, रिश्वतखोरी तथा साम्प्रदायिकता का बोलबाला है। समाज में वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत आज भी ऊँच-नीच की भावना बरकरार है। कबीर अपने जीवन काल में जिन कुरीतियों एवं विषमताओं से जूझ रहे थे वही समस्याएँ रूप बदलकर वर्तमान समय में विद्यमान हैं। अत: कबीर का साहित्य आज भी उतना ही प्रासंगिक है। इस सन्दर्भ में मैंने कबीर की विचारधारा पर आज के संदर्भ में दृष्टिपात करने की चेष्टा की है।

कबीर ने किसी ग्रन्थ से ज्ञान की प्राप्ति नहीं की। उन्होने साधना, अनुभव तथा सत्संग से ज्ञान अर्जित की। अतएव उनकी वाणियाँ अनुभव पर

आधारित हैं। कबीर की वाणियाँ दो धाराओं में विभाजित है, पहली धारा भक्ति पर आधारित है, जिसमें उन्होंने निर्विकार, निराकार ब्रह्म की उपासना की तथा उसके अस्तित्व को स्वीकार किया। दूसरी धारा में सामाजिक कुरीतियों पर कड़ा प्रहार किया। कबीर निम्न जाति के होते हुए भी अपने को हीन भावना से मुक्त रखा। निर्भीक तथा फक्कड़ होकर अपनी बात जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया। कबीर को भाषा पर जबरदस्त अधिकार था। कबीर बेबाकीपन से अपनी बात रखते थे। बिना किसी लाग लपेट के बिल्कुल निर्भीकता से वे अपनी बात कह देते थे। शब्द उनके विचारो के आगे नहीं आते थे। वे भाषा को जैसा चाहते थे वैसा ही घुमा देते थे। भाषा पर उनकी इसी जबरदस्त पकड़ को देखते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्ववेदी ने उन्हें वाणी का डिक्टेटर कहा है। कबीर मस्तमौला थे जो कुछ कहते थे साफ कहते थे। जब मौज में आकर रूपक और अन्योक्तियों पर उतर आते थे तब जो कुछ कहते थे वह सनातन कवित्व का श्रृंगार होता था। उनकी कविता में कभी सनातन सत्य खर्वित नहीं हुआ। जो कुछ कहते थे अनुभव के आधार पर कहते थे।[2]

कबीर संत फकीर, समाज सुधारक, क्रांतिकारी के रूप में जाने जाते है। सामाजिक विसंगतियों के संदर्भ में उनका स्वभाव विद्रोही रहा है, उसमें अक्खड़पन है। वह हरफनमौला हैं। कबीर अपने ही मौज में क्रांति की बात करते हुए कहते हैं-

हम घर जाल्या आपणा लिया मुराडा हाथि।
अब घट जालौं तासका जे चले हमारे साथि।।[3]

यह केवल विद्रोह का स्वर नहीं है बल्कि परस्पर द्वेष, वैमनस्य, घृणा, ईर्ष्या रखनेवाले मनुष्यों, युद्ध और हिंसा की विभीषिका को झेलते हुए मनुष्यों, जातीय घृणा और सांप्रदायिक तनाव में जीनेवाले लोगों, हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-शूद्र आदि में विभाजित कर जी रहे लोगों को आह्वान है। कबीर इन सब विसंगतियों को त्यागकर अपने साथ सन्मार्ग पर चलने का सुझाव देते हैं।

कबीर की वाणियाँ प्रेमभक्ति, पाखंड, धार्मिक उन्माद, जातिवाद हर संदर्भ में आज प्रासंगिक हैं। वह ज्ञान बेकार होता है जो केवल ज्ञान को ही मुक्ति मानते हैं। घंटों मंत्रोच्चारण करने, आरती करने या ग्रंथों का वाचन करने से ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती है। वेदों अथवा शास्त्रों के ज्ञान पर उपदेश देनेवाला यदि अपने पड़ोसी या भाई के प्रति प्रेम, भाईचारे की भावना नहीं रखता है तो प्रेमाभाव में उसका ज्ञान व्यर्थ है। सच्चा प्रेम ही तो ईश्वर है। यदि हम प्रेम को धारण करते हैं तो हमें ईश्वर ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भाया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।[4]

ज्ञान का प्रकाश चारों तरफ फैलने पर भी लोग दिखावा, मिथ्याचारों तथा कथित साधुओं के चक्कर में पड़कर विभिन्न प्रकार के धार्मिक चक्रव्यूह में बुरी तरह फँस जाते

हैं। विभिन्न धार्मावलंबी लोगों की असुविधा या परेशानी को नजरअंदाज करते हैं। धार्मिक प्रवचन, कीर्तन लाउडस्पीकर लगाकर करते हैं मानो वे अपनी बात ईश्वर तक पहुँचाने का प्रयास करते हैं। इस तरह भक्ति-भावना में दिखावा नजर आता है। भक्ति में प्रचार की इसी भावना की अस्वीकृति हमें कबीर की इस वाणी में स्पष्ट होता है-

कांकर पाथर जोरि के, मस्जिद लिया बनाय।
ता पर मुल्ला बांग दे, बहरो हुआ खुदाय।[5]

प्रत्येक मनुष्य के हृदय में ईश्वर निवास करते हैं। अपने किसी विशेष अभिलाषा की पूर्ति या ईश्वर के दर्शन के लिए देवालय जाया जाता है। किसी विशिष्ट अवसर पर भेंट चढाने के लिए ईश मंदिर के प्रवेश द्वार पर घंटों कतार में अपनी बारी का इंतजार करना पड़ता है। यह सब व्यर्थ है। वास्तव में अगर हम अपने भीतर देखें तो ईश्वर को पाने के लिए मंदिर, मस्जिद अथवा गुरुद्वारे में जाने की आवश्यकता ही नहीं है।

मोको कहाँ ढूंढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौने क्रिया कर्म में, नहीं योग वैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहों पलभर की तालास में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वांसों की स्वाँस में।[6]

लोभ हर जुर्म की जननी होती है। सुखी जीवन जीने के लिए धन अनिवार्य होता है। जब धन-पिपासा बढ जाती है तो मनुष्य आवश्यकता से अधिक धन संचित करने के लिए लालायित रहता है। इसके लिए अनैतिक कार्य करने से भी परहेज नहीं करता है। कबीर धन संग्रह के विरोधी थे। वर्तमान युग में मनुष्य की भौतिकतावादी प्रवृति अपने चरम पर है। आए दिन भ्रष्टाचार, कालेधन की खबरों से हम रू-ब-रू होते रहते हैं। ऐसे में हमें कबीर सहज ही याद आ जाते हैं। उन्होंने लोगों को संतोष का उपदेश देते हुए कहा-

साई इतना दीजिए, जामे कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधू न भूखा जाय।[7]

मनुष्य की आत्मा और मन भले ही कलुषित हो पर वह अपने शरीर की शुद्धता पर ध्यान देता है। सच्चे भाव से की गई भक्ति आडम्बर की तुलना में सदैव श्रेष्ठ होता है। संस्कृति व परम्परा को बिना आत्मसात किए माला जपना, चन्दन का टीका लगाना या केश मुड़ाना उचित नहीं है। यह तो एक ढोंग बनकर रह जाता है-

कैसौं कहा बिगाड़िया, जो मुंडे सौ बार।
मन कौ काहे न मूंडिए, जामै विषै विकार।।
माला पहरया कुछ नहीं, रूल्या मूवा इहि मारि।
बाहरि ढोल्या हिंगलू, भीतरि भइया भंगारि।[8]

प्राय: कथनी और करनी में विषमता देखी जाती है। कर्म के बिना कथन का कोई मूल्य नहीं होता है। गाँधीजी ने भी इसके महत्त्व को समझा था। उन्होंने एक बच्चे को 'जंक फूड सेहत के लिए हानिकारक है' की सीख देने के लिए पहले स्वयं उसे खाना छोड़ फिर उस बच्चे को मना किया। कर्म और कथन में संगतता होने से बात प्रभावशाली होती है। अत: कथनी एवं करनी में एकत्व होना चाहिए-

करनी बिन कथनी कथै, अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्यों भूंकत फिरै, सुनी सुनाई बात।।[9]

कोई भी सम्प्रदाय आपसी भेदभाव, मनमुटाव तथा हिंसा को प्रोत्साहित नहीं करता है। ईश्वर बलिदान से कभी भी खुश नहीं होता है। अपने द्वारा सृजित सृष्टि के विनाश से ईश्वर को दु:ख होता होगा। इस रहस्य को समझना आज के संदर्भ में अत्यावश्यक है ताकि विश्व शांति की स्थापना हो सके। संसार अमन चैन का जीवन व्यतीत कर सके -

दिनभर रोजा धरत हौ रात हनत हो गाय।
यह तो खून वह बंदगी क्योंकर खुसी खोदाय।।[10]

मनुष्य अपना यह जीवन सुधारने के लिए तीर्थों में भ्रमण करते हैं। रिश्वतखोरी, शोषण से एकत्रित धन को धार्मिक कार्यों में खर्च करके पुण्य पाने की चेष्टा करते हैं परन्तु यह भूल जाते हैं कि किसी को दुखित करके पुण्य की प्राप्ति नहीं की जा सकती। अत: रिश्वत के धन से धार्मिक यात्रा को बेकार बताते हुए कबीरदास कहते हैं-

तीरथ करि करि जग मुवा, दुन्धे पांणी न्हाइ।
रामहि राम जपंतडा, काल घसीट्याँ जाई।।[11]

कबीर ने मूर्तिपूजा का विरोध किया। मूर्तियाँ मंदिरों में कैद होती थी, जहाँ शूद्रों का जाना वर्जित था। आज भी मानसिकता तथा परिस्थितियाँ बदली नहीं हैं। बड़े-से-बड़े निम्न जाति के व्यक्ति के मंदिर में प्रवेश करते ही पुजारी पूरे मंदिर को धोकर शुद्ध करने का निरर्थक प्रयास करते हैं। कबीर ऐसी अवस्था में मूर्तिपूजा को भ्रमजाल मानते हैं। निर्जीव पत्थर को पूजना व्यर्थ बताया जो कभी उत्तर नहीं देता है। अंधे लोग उम्मीदवश व्यर्थ की पूजा में अपनी ताकत तथा प्रतिष्ठा नष्ट करते हैं-

पाँहिनकूं का पूजिए, जे जनम न देई जाब।
आँधा नर आसामुषी, यौं ही खोवै आब।।[12]

कबीर का संघर्ष दलित तथा पीड़ित वर्गों के अस्तित्व का था। उनके क्रांतिकारी और विद्रोही रूप से तब भी समाज हिला था और आज भी स्पंदित होता है। जहाँ आज का मानव विलासिता और चकाचौंध से भ्रमित है, परेशान है, कुंठा का शिकार हो रहा है। युवाओं में आत्महत्या के दर में बेतहासा वृद्धि हुई है ऐसे में कबीर की वाणी प्रकाश पुंज बनकर हमें जीवन के वास्तविक सुख से परिचित कराने में कारगर हैं। उनकी वाणी एक साथ चिंगारियाँ और शीतल बूँदों की बौछार करती है। कबीर ने जीवन के यथार्थ को

अच्छी तरह पहचाना था। मेरे विचार से जब तक यह समाज कबीर के विचार को अच्छी तरह नहीं पहचानेगा, तब तक समाज में व्याप्त विषमता, हिंसा, वैमनस्य, भेदभाव की भावना खत्म नहीं होगी। उनकी वाणी कल प्रासंगिक थी, आज है और कल भी रहेगी। कबीर के विद्रोही विचार आज भी लोगों में आत्मविश्वास पैदा करने की क्षमता रखती हैं। वस्तुतः संत कबीर की वाणी जबतक जनता के हृदय में जीवन जीने की कला का मूलमंत्र बनकर प्रतिष्ठित है, वह मनुष्य के करीब रहेगा भी। कबीर नवजागरण के अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित हैं। कबीर की वाणी शाश्वत है और कबीर का सन्देश प्रत्येक युग में प्रासंगिक है, वह कालजयी है।

सन्दर्भ

1. हिंदी साहित्य की भूमिका, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण संवत्-2014, पृष्ठ-93
2. कबीर ग्रंथावली, सम्पादक-रामकिशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन-इलाहाबाद, नवम संस्करण-13, पृष्ठ -71
3. कबीर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पांचवां संस्करण 1987, पृ.158
4. कबीर ग्रंथावली, सं.- रामकिशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवम संस्करण-13, पृष्ठ-104
5. कबीर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पांचवां संस्करण-1987, पृष्ठ-195
6. कबीर ग्रंथावली, सं. रामकिशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवम संस्करण-13, पृष्ठ-105
7. वही-पृष्ठ-08
8. वही, पृष्ठ-07
9. कबीर वचनावली, संग्रहकर्ता-अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-011, पृष्ठ-89
10. वही, पृष्ठ-199
11. कबीर ग्रंथावली, सं.- रामकिशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवम संस्करण-13, पृष्ठ-11
12. वही, पृष्ठ-04

मकान न.-5, कुर्जी, क्रिश्चन कॉलोनी, सदाकत आश्रम मार्ग, पटना। ई-मेलः karunakamal2015@gmail.com

हिन्दी-साहित्य और महादेवी वर्मा का रहस्यवाद

● आशा कुमारी

विश्व-साहित्य में अपने देश, अपनी सभ्यता, संस्कृति, भाषा का अलग-अलग रंग होता है। उसी के अनुरूप विश्व-साहित्य के रचनाकार अपनी भावात्मक एवं वैज्ञानिक अनुभूतियों का मूल्यांकन करते हैं। साहित्य समाज का एक विशाल दर्पण है। इस दर्पण के आधार पर हम विभिन्न प्रकार की कलात्मक, विचारात्मक, एवं वैचारिक अभिव्यक्ति करते हैं।

विश्व का निर्माण ही एक विशिष्ट संरचना है जो एक पहेली के समान है। मानव की सामान्य बुद्धि जिस वस्तु की रहस्यात्मक संरचना पर ध्यान देती है तो उसे तुच्छता और लघुता का आभास होता है। नाना प्रकार की विविधताओं को सुलझाने की प्रक्रिया का प्रयास ही रहस्य कहलाता है। विश्व की भौगोलिक आकृति का एक अंश हमारा भारत है। इसकी संरचना इतनी संश्लिष्ट है कि दुनिया के लोग हमारी सांस्कृतिक आध्यात्मिक विविधता को देख आश्चर्यचकित होते हैं।

सरंचना जितनी ही विविधताओं से परिपूर्ण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में रहस्यात्मकता भी होगी। रहस्य शब्द का सामान्य अर्थ जितना आसान है उसकी व्याख्या उतनी ही कठिन है। हमारा राष्ट्र दर्शन प्रधान रहा है। सभ्यता और संस्कृति एवं ज्ञान के क्षेत्र में सर्वोपरि रहा है। यही कारण है कि यहाँ का साहित्य नाना प्रकार की विशेषताओं से परिपूर्ण हैं। यूँ तो हमारे हिन्दी साहित्य का जो इतिहास लिखा गया है उसका आरम्भिक काल आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार संवत् 1050 ई0 माना जाता है। उस समय से लेकर आज तक की दीर्घकालीन परिस्थितियों में हिन्दी-साहित्य का इतिहास विस्तृत है। रहस्यात्मक प्रवृति कमोवेश प्रत्येक काव्यकार की काव्यात्मक अभिव्यक्तियों में पायी जाती है।

इस प्रकार सामान्यतः रहस्यवाद शब्द का अभिप्राय उस वाद अर्थात् विचारधारा से है जिसका मूलाधार अर्थ में ही छिपा है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो विश्व का सबसे बड़ा रहस्य वह परमतत्त्व या परमेश्वर है जो सम्पूर्ण विश्व का रचनाकार है। वस्तुतः रहस्यवाद का संबंध विश्व की इसी रहस्यमयी शक्ति से है।

सम्पूर्ण भक्तिकाल के काव्यकारों की रचनाओं में रहस्य की अभिव्यक्ति हुई है। काव्यकारों की लम्बीसूची में महादेवी वर्मा का नाम सम्मानपूर्वक लिया जाता है। इनकी रहस्य की परख के पहले भारतीय सरंचना के चिंतक एवं विचारक की रहस्यानुभूति का अल्प परिचय प्रस्तुत करना अनिवार्य है–अग्रेंजी के रोमांटिक कवि शेली के शब्दों में –

"The desire of the moth for the star of the night for the morning the devotion to something a far from the sphere of our sorrow" - (Shelly)[1]

आर्चाय रामचन्द्र शुक्ल कहते है कि ''साधना के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, काव्य के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।''[2]

डॉ0 रामकुमार वर्मा के अनुसार –''रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृति का प्रकाशन है जिसमें वह द्विव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहता है और वह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता है।''[3]

वेदना की कवयित्री महादेवी वर्मा के शब्दों में, ''छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल से बिम्ब–प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दु:ख में उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी।''[4]

रहस्यवाद पर विचार करनेवालों में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेद्वी, डॉ० नामवर सिंह, जयशंकर प्रसाद आदि के नाम भी महत्त्वपूर्ण हैं।

इस प्रकार सामान्यत: रहस्यवाद शब्द का अभिप्राय उस वाद अर्थात् विचारधारा से है जिसका मूलाधार अर्थ में ही छिपा है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो विश्व का सबसे बड़ा रहस्य वह परमतत्त्व या परमेश्वर है जो सम्पूर्ण विश्व का रचनाकार है। वस्तुत: रहस्यवाद का संबंध विश्व की इसी रहस्यमयी शक्ति से है।

ऐसी गूढ़ परिभाषा की अधिकता देखकर यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि रहस्यवाद अंतर–आत्मा की उस रहस्यमय भावना का नाम है जिससे वह अज्ञात शक्ति को पाना चाहता है। ऐसा गहरा रिश्ता जोड़ना चाहता है, जिससे वह और प्रियतम कभी भिन्न न हों, ऐसी भावना प्राप्त होने पर जीवात्मा उसके प्रेम में इतना डूब जाता है कि उसे अपना ज्ञान नहीं है। उसे स्व: और परमात्मा के बीच एकरूपता अनुभव होती है। सामान्यत: रहस्यवाद के तीन प्रमुख लक्षण हैं–

1. अद्वैतवादी विचारधारा
2. परमात्मा से रागात्मक संबंध की अनुभूति
3. भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति

इसकी तीन स्थितियाँ मानी गयी हैं।

1. जब साधक या कवि उस परमेश्वर से संबंध स्थापित करने की अभिलाषा रखता है, तब भौतिकता से परे हो जाता है और सांसारिक भोग विलास की कोई चिंता ही नहीं रहती है।

2. आत्मा-परमात्मा से सहवास की अनुभूति करके उससे प्रेम करने लगती है।

3. इस अवस्था में आत्मा से परमात्मा भिन्न नहीं रहती है तथा सहज ही परमात्मा के गुणों को अपने में धारण कर लेती है।

आलोचकों एवं समीक्षकों ने इसके चार भेद माने है-

1. प्रेम और सौंदर्य सम्बन्धी रहस्यवाद

2. ज्ञान-सम्बन्धी रहस्यवाद

3. दर्शन-सम्बन्धी रहस्यवाद।

4. प्रकृति एवं धर्म-उपासना संबंधी रहस्यवाद।

प्रेम और सौंदर्य सम्बन्धी रहस्यवाद में आत्मा-परमात्मा को प्रेमी-प्रेमिका रूप में स्वीकार करती है। और उससे अपना प्रेम प्रकट करती है। यही भावना भक्तिकाल के हिन्दी कवियों में कबीरदास एवं जायसी की है।

कबीरदास के शब्दों में -

भींजै चुनरिया प्रेम रस बंदन।
आरत साज के चली है सुहागिन प्रिय अपने को ढूँढ़न।
काहे की तोरी बनी है चुनरिया काहे के लगे चारो फूँदन।
पाँच तत्त की बनी है चुनरिया नाम के लागे फुँदन।
चढ़िगे महल खुल गई रे किवरिया दास कबीर लागे झूलन।।

दूसरी पंक्तियाँ भी देखिये-

''नैनों की करि कोठरी पुतली पलंग बिछाय।
पलकों के चिक डार के पिय को लिया रिझाय।।''

जायसी के पद्मावत में पद्मावती का विरह-वर्णन-

एक पंक्ति द्रष्टव्य है-

''तीन लोक चौदह खण्ड सबै परै मोकि सूझि,
प्रेम छांड़ि किछु और न लोना जौ देखौ मन बूझि।''

उन्होंने सूर्य और चन्द्रमा तक को समेट रखा है। देखिये -

''अस परजरा विरह कर गठा।
मेघ साम भये धूम जो उठा।।''

उपर्युक्त विचारकों की रहस्यात्मक अभिव्यक्ति के पश्चात कवयित्री महादेवी वर्मा के काव्य की रहस्यात्मक स्थिति एवं अभिव्यक्ति कई रूपों में हुई है। वस्तुतः महादेवी का बचपन अपनी माँ के भक्तिमय भजन-पूजन और वातावरण में व्यतीत हुआ। उनके व्यक्तित्व पर बौद्ध-दर्शन की करुणा का गहन प्रभाव पड़ा। साथ ही, महादेवीजी की वैवाहिक स्थिति भी सही नहीं थी उनके पति ने परित्याग कर दिया।

इस प्रकार उनके जीवन में व्यथा, वेदना, पीड़ा गहरे रूप से छा गयी। कवयित्री का जीवन हाहाकार करता रहा। महादेवी की कविताएँ उसी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति है।

इसी पीड़ा ने उन्हें प्रेम-परक रहस्यवाद की ओर प्रेरित कर दिया। अपनी प्रेम पीड़ा को कम करने की कोशिश में उनकी प्रेम-पीड़ा किसी अज्ञात अलौकिक अव्यक्त प्रियतम की ओर प्रवाहित हो चली।

महादेवी के रहस्यवाद की मुख्य विशेषताएँ निम्नांकित हैं-

महादेवी के रहस्यवाद में स्पष्ट है कि प्रेम भावना की प्रधानता है। अज्ञात सत्ता एवं अव्यक्त परमात्मा को उन्होंने अपने पति के रूप में माना है। वे पलकों में रखते हुए कहती है-''मैं पलकों में पाल रही हूँ यह सपना सुकुमार किसी का।''[9]

महादेवी ने अज्ञात प्रियतम के प्रति प्रणय-निवेदन किया है, किन्तु उनका प्रणय दु:ख प्रधान है। वे प्रियतम से मिलने की कामना नहीं करती क्योंकि मिलन में तो व्यक्तित्व का ही नाश हो जाता है।

''मिलन का मत नाम लो
मै विरह में चिर हूँ।''

महादेवी ने दु:ख को व्यक्तिगत जीवन के संदर्भ में स्वीकार किया है। सामाजिक जीवन के प्रसंग में तो वे अथक और अमर साधना में विश्वास रखती है। अपनी पीड़ा का वर्णन उन्होंने इन शब्दों में किया है-

''अमरता उसमें मनाती है मरण-त्यौहार।''

विरहिणी की आध्यात्मिक साधना और लोक-साधना में अंतर नहीं है। सृष्टि के प्रति प्रेम और उस मूल सत्य के प्रति प्रेम में समानता है।

''मैं कण-कण में ढाल रही
अलि आँसू के मिस प्यार किसी का।''

महादेवी ने निर्गुण के प्रति जिस प्रणय-भाव की अभिव्यक्ति की है, उसकी वास्तविकता अनुभूतियाँ है, और कहाँ तक अनुभूति की रमणीय कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता। प्रेम-परक रहस्यवाद में यह स्वाभाविक है, क्योंकि कवयित्री ने तो उसे देखा तक नहीं। वे स्वयं कहती हैं-

''मैंने देखा उसे नहीं,
पग ध्वनि केवल है पहचानी।''

प्राय: कुछ लोग मीरा से महादेवी की तुलना किया करते हैं, लेकिन यह उचित नहीं, क्योंकि मीराबाई के प्रियतम गिरधर गोपाल सगुण ईश्वर के प्रतीक हैं, लेकिन महादेवी के प्रियतम सगुण-साकार नहीं है। वे निर्गुण निराकार हैं। उस प्रियतम के प्रेम में इतनी व्याकुल हैं कि वे कहती हैं-

''पार कर लूँगी वही पदचाप यदि कर दें निर्मंत्रित
नाप लेगा नभ विहग-मन बाँध लेगा प्रलय मृदु तन।''

महादेवी का जीवन दीप निरन्तर प्रज्वलित है और उस पथ को प्रकाशित करता रहता है जिधर से प्रियतम के आने की सम्भावना है-

''मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।''

महादेवीजी की कविता में अज्ञात सत्ता के प्रति विरह भावना के दर्शन होते हैं इसलिए उनकी कविता को रहस्यवाद के अन्तर्गत स्थान दिया गया है। प्रियतम से मिलन का प्रयास वे जीवन के अंतिम क्षणों तक करना चाहती है-

''हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका
राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक का निशानी
है तुझे अंगार-शया पर मृदुल कलियाँ बिछाना
जाग तुझको दूर जाना।''[16]

महादेवी ने जिस अनन्त को अपनी भावनाओं का आलम्बन माना है वह निराकार होते हुए भी प्रेम व विरह आदि गुणों से अभिभूत है और वह स्वयं कहती हैं-

''हास का मधु-दूत भेजो,
रोष की भ्रू-भंगिमा पतझार का चाह सह जो।''

उनकी यही रहस्य भावना का प्राण विरहजन्य आकुल प्रणय निवेदन है और उनकी रहस्यानुभूति पाश्चात्य नीरवतावादी रहस्यवादियों से प्रभावित होने के कारण वह भी उनकी भाँति पीड़ा या वेदनानुभूति को अपनी रहस्य साधना अंग समझती है।

डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त के शब्दों में - ''महादेवीजी के काव्य में इस विरह-स्थिति की व्यापक उपलब्धि होती है। विरहानुभूति की तीव्रता और मधुरता उनके काव्य में इतनी व्याप्त रही है कि उन्होंने इसके समक्ष ईश-मिलन के अमर आनन्द की प्राप्ति को भी तुच्छ माना है।''[18]

महादेवी ने अपनी रहस्यानुभूति के निम्न छः आधार माना है-

1. मनुष्य का प्रकृति से तादात्मय
2. प्रकृति के व्यक्ति सौंदर्य पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप
3. प्रकृति की समष्टि में रहस्यानुभूति
4. असीम की अनन्त सत्ता में मधुर व्यक्तित्व का आरोपकर उसके प्रति आत्मसमर्पण
5. ज्ञान क्षेत्र में तत्वमसि, सर्व खल्विदं ब्रह्म आदि का तत्त्व चिन्तन
6. सार्वभौम करुणा- इनमें करुणा को विशेष महत्व दिया गया है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी रहस्यवाद का आधार वेदना को मानते हुए कहा है-

''रहस्यवादी के चित में किसी न किसी रूप में परम-प्रेममय, परमानन्दमय लीलानिकेतन चिन्तन प्रिय का विश्वास अवश्य होना चाहिए। दो प्रकार से यह विश्वास आ सकता है।

1. चिंरतन मनन से और
2. भीतर की पीड़ा और व्याकुलता की अनुभूति के द्वारा।''

निष्कर्षत: आत्म-समर्पण की यह भावना बुद्ध की सार्वभौमिक महाकरुणा से समन्वित ही सेवावाद का मूल आधार हो गई है और महादेवी ने रहस्यवाद को आत्मा का गुण माना है।

उनका रहस्यवादी जीवन सेवा का जीवन दर्शन ही है और उनकी रहस्य भावना उनके हृदय का सौंदर्य है तथा यह बिरले ही रहस्यवादी कवियों में प्राप्त होती है।

अत: महादेवी के काव्य में जो रहस्यवाद है वह आत्मा परमात्मा के संबंधों के प्रति कवयित्री के अटूट विश्वास का परिचायक है और उनकी कविता में भी इसकी मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। इनकी भावनाएँ दिल को छू जाती हैं। इसलिए उनकी अनुभूतियाँ सच्ची हैं, प्रेम अलौकिक है। उनका विरह आध्यात्मिक है। उनमें वासना नहीं, उपासना है। इतना तो अवश्य हमें मानना पड़ेगा कि कवयित्री ने अपनी प्रेम का उदात्तीकरण कर दिया है।

संदर्भ

1. shelly
2. महादेवी और उनका काव्य, संपादक-डॉ० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ. 41
3. वही, पृ. 42
4. वही, पृ. 43
5. हिन्दी काव्य प्रवेश, संपादक डॉ० हरिहर नाथ, पृ. 30
6. वही, पृ. 27
7. प्रतियोगिता साहित्य, यू. जी. सी. नेट, जे. आर. एफ., स्लेट हिन्दी तृतीय प्रश्न-पत्र, पृ. 598
8. वही, पृ. 599
9. दीपशिखा, संपादक-महादेवी वर्मा, पृ. 95
10. हिन्दी-साहित्य का इतिहास, सम्पादक-डॉ० नगेन्द्र, पृ. 533
11. वही, पृ. 533
12. दीपशिखा, संपादक-महादेवी वर्मा, पृ. 95
13. महादेवी और उनका काव्य, सम्पादक-डॉ० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी राकेश, पृ. 51
12. दीपशिखा, संपादक-महादेवी वर्मा, पृ. 73
13. महादेवी और उनका काव्य, सम्पादक-डॉ० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी राकेश, पृ. 53
14. प्रतियोगिता साहित्य, यू. जी. सी. नेट, जे. आर. एफ., स्लेट हिन्दी तृतीय प्रश्न-पत्र, पृ. 116
15. दीपशिखा, संपादक-महादेवी वर्मा, पृ. 43
16. महादेवी और उनका काव्य, सम्पादक-डॉ० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी राकेश, पृ. 51
17. वही, पृ. 52
18. वही, पृ. 53

तदर्थ प्राध्यापिका। अरविन्द महिला कॉलेज, पटना, मगध विश्वविद्यालय

सम्पर्क: द्वारा श्री राजनारायण साह, सादिकपुर, मछुआटोली, गुलजारबाग, पटना सिटी-800007

नासिरा शर्मा की रचनाओं में चित्रित महिलाओं का स्वरूप

● प्रगति चौधरी

यह हमारे समाज का सत्य है और शायद यही कारण रहा है कि न चाहते हुए भी निश्चित आयु सीमा के बाद लड़कियों की शादी करनी जरूरी समझी जाती है। जैसा की कहानी की नायिका अनाहिता की माँ महसूस करती है। अब हमारे समाज में पहले जैसी स्थिति नहीं रही है। अब धीरे-धीरे सब कुछ बदल रहा है। व्यक्ति और उनकी सोच में परिवर्तन आ रहा है। सब कुछ पराया-पराया-सा लगने लगा है। लोग बदले-बदले नज़र आने लगे हैं। एक समय वह था जब मुहल्ले के सभी औरत- मर्द एक ही नल पर नहाते-धोते और बड़े ही आराम से जीवन व्यतीत करते थे लेकिन आधुनिक चकाचौंध में हमारा समाज अपनी मूल्यों को खोने लगा है।

हिन्दी की प्रसिद्ध समकालीन लेखिकाओं में नासिरा शर्मा की एक विशिष्ट पहचान है। उन्होंने संसार के मानचित्र पर विभिन्न देश, भाषा, धर्म, रंग के लोगों को एक ही अनुभव से गुज़रते देखा है। सबके अंदर एक ही राग है जिसे आम भाषा में हम पीड़ा कह सकते हैं। और उसी पीड़ा की नब्ज़ को पकड़ने की कोशिश की है नासिरा जी ने। उनकी रचना 'इन्सानी नसल', 'एक थी सुल्ताना', 'कुइयाँजान', 'खुदा की वापसी', 'ठीकरे की मंगनी', 'बुतखाना', 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'शाल्मली' आदि प्रमुख कथा संग्रहों के माध्यम से धर्म, सम्प्रदाय जैसे ज्वलंत मुद्दों का चित्रण तो किया ही है, साथ-ही-साथ स्त्री के अधिकार और मुक्ति के प्रश्न को भी बड़ी शिद्दत के साथ उठाया है। उनकी स्त्री सोच का दायरा किसी देश व समाज से बँधा हुआ न होकर वैश्विक परिप्रेक्ष्य में फैला हुआ है। यही कारण है कि उनके चिंतन के केन्द्र में पूरा स्त्री समाज है। उन्होंने अपने लेखन में विभिन्न देशों व समाजों की स्त्रियों एवं उनकी समस्याओं को निकट से देखने व समझने की कोशिश की है। हिन्दुस्तान के अलावा पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान, सीरिया, रूस, जापान, फिलिस्तीन, मिस्र, टर्की, मलेशिया, केन्या आदि देशों की लेखिका, पत्रकार, समाजसेवी, गायिका आदि से साक्षात्कार का मौका नासिराजी को मिला और उन्होंने उन स्त्रियों के बहाने उन देशों की स्त्रियों की दशा और दुर्दशा का चित्रण किया है। देशी-विदेशी स्त्रियों के इन साक्षात्कारों को पढ़कर यह ज्ञात होता है कि आम तौर पर हर जगह स्त्रियों की स्थिति एक ही है। भारत जैसे देश में आकर ईरानी गायिका **शीरिन**

जैसी आजादी महसूस करती हैं, उसे देखकर लगता है कि भारत में अनेक देशों की अपेक्षा औरतें अधिक आजाद हैं। अपने देश और भारत में स्त्रियों की तुलना करते हुए शीरिन कहती हैं-

''खुदा लाख कहे कि उसके लिए सारे बंदे बराबर हैं, औरत-मर्द में कोई फर्क नहीं मगर जब दुनियावी खुदा इस बात को समझे तब न! यहाँ (हिंदुस्तान में) जिस आजादी से बालों की चोटी बांधकर सिर खुला रखती हूँ, टॉप और पैंट पहनकर घूमती हूँ। वहाँ ऐसी नहीं कर सकती हूँ।''[1] 'पतझड़ का फूल' कहानी की नायिका अनाहिता बेमेल विवाह करने से मना कर देती है। वह कहती है, ''शादी के बिना भी वह रह सकती है, पर उल्टे-सीधे किसी युवक के साथ उसका गुज़ारा नहीं हो सकता।''[2] प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में जीवन साथी का एक चित्र अवश्य होता है और इतनी सशक्त होने के बाद किसी भी व्यक्ति को समाज और धर्म के दबाव में आकर हार नहीं मानना चाहिए। हमारे समाज में शादी होना इतनी बड़ी समस्या नहीं है, जितना अपनी पसन्द का साथी मिलना। तुम जल्दी लौटा करो। इतनी रात को तुम ड्यूटी बजा कर तो अन्दर आ जाती हो, फिर कितने चेहरे बाहर निकलते होंगे।''[3] यह हमारे समाज का सत्य है और शायद यही कारण रहा है कि न चाहते हुए भी निश्चित आयु सीमा के बाद लड़कियों की शादी करनी जरूरी समझी जाती है। जैसा की कहानी की नायिका अनाहिता की माँ महसूस करती है। अब हमारे समाज में पहले जैसी स्थिति नहीं रही है। अब धीरे-धीरे सब कुछ बदल रहा है। व्यक्ति और उनकी सोच में परिवर्तन आ रहा है। सब कुछ पराया-पराया-सा लगने लगा है। लोग बदले-बदले नज़र आने लगे हैं। एक समय वह था जब मुहल्ले के सभी औरत-मर्द एक ही नल पर नहाते-धोते और बड़े ही आराम से जीवन व्यतीत करते थे लेकिन आधुनिक चकाचौंध में हमारा समाज अपनी मूल्यों को खोने लगा है। देखा जाय तो आज बंद कमरे में भी औरतें अपने आपको असुरक्षित महसूस करती हैं।

स्त्रियों को कैसी आजादी चाहिए? कितनी आजादी चाहिए? बाजार जहाँ स्त्रियों को देह की आजादी दिलाकर अपना फायदा करने के पक्ष में है, वहीं कुछ बुद्धिजीवी स्त्रियाँ इसके खिलाफ भी हैं। स्वयं नासिरा शर्मा इस मत से सहमत नही है। ''पहले ढके-छिपे हुस्न की अहमियत थी मगर अब खुदा के बनाए जिस्म की नुमाइश ही सब कुछ है''[4] स्त्रियों को चाहिए कि वह समानता का स्तर पाने के लिए संघर्ष अवश्य करें। किन्तु अपनी स्वाभाविक लज्जा का ध्यान रखते हुए। निर्लज्ज और निर्वस्त्र होकर वह धन कमा सकती है किन्तु सम्मान को प्राप्त नहीं कर सकतीं। भौतिकवादी चकाचौंध में निर्वस्त्र धूमती स्त्री अंग प्रदर्शन कर अपने लिए तालियाँ बटोर सकती हैं, उसे यह भ्रांति हो सकती है कि उसे सम्मान मिल रहा है, तो स्मरण रहे कि यह तालियाँ बजना स्त्री स्वतंत्रता का प्रतीक, सम्मान नहीं, अपितु अपमान है, क्योंकि जब पुरुष समाज उसके लिए तालियाँ बजाता है तब वह

उसे अपनी भोग्या और मनोरंजन का साधान समझकर ही ऐसा करता है। जिसे सम्मान कहना स्वयं सम्मान का भी अपमान करना है। पाकिस्तान की नारीवादी कवयित्री **किश्वर नाहीद** आजादी के इस आशय से इत्तेफाक नहीं रखतीं। नासिराजी से बात करते हुए उन्होंने कहा है–''आजादी का मतलब यह नहीं होता कि यदि एक मर्द पाँच औरतों के पीछे जाता है तो एक औरत भी पाँच मर्दों के पीछे जाय। जो चीज मर्द के लिए बुरी है वो औरत के लिए भी है।''[5]

नासिराजी उस दूसरी धारा की विमर्शकार हैं जिनके लिए स्त्री का स्त्रीत्व बहुत मायने रखता है। वे कभी भी मर्द के विरोध में नहीं जाती। दुनिया के अलग-अलग देशों की स्त्रियों के अधिकार, उनकी स्वतंत्रता, उनकी बराबरी की हिमायती जरूर हैं। लेकिन इसके लिए वे तोड़-फोड़ का रास्ता अख्तियार नहीं करतीं, बल्कि पुरुषों को साथ लेकर चलना चाहती हैं। एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा है कि–''मेरा अपना ख्याल है कि औरत-मर्द इंसान के दो रूप हैं। इनमें कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। औरत मर्द के संबंध इसीलिए कड़वे हो जाते हैं कि वे एक-दूसरे को बराबर समझ प्यार और सम्मान नहीं दे पाते हैं। या तो डरते हैं या फिर हुकूमत करते हैं।''[6]

स्त्री के प्रति उनकी सोच बड़ी स्पष्ट है वे जागृत होती स्त्री-चेतना में आँधियाँ नहीं भरतीं, उन्हें विद्रोही नहीं बनाती, बल्कि बुद्धिमता से, विवेक से, उनमें नये रास्ते के चयन का उत्साह भरती हैं। उनकी स्त्रीवादी सोच 'वीमन राइट्स' पर विश्वास नहीं रखती, बल्कि 'हयूमन राइट्स' में यकीन करती है।

संदर्भ

1. औरत की आवाज, नासिरा शर्मा, खण्ड-1, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली-51, पृष्ठ संख्या-67
2. मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-27
3. वही
4. औरत की आवाज, नासिरा शर्मा, खण्ड-2, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली-51, पृष्ठ संख्या-233
5. वही, खंड-3, पृष्ठ-25
6. वही, खंड-1 पृष्ठ-292

शोधार्थी, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

हिन्दी का वैश्विक स्वरूप

● रेखा रानी

वैश्विक स्तर पर हिन्दी के प्रति रुचि और आकर्षण एकाएक महसूस नहीं हुआ। इसके पीछे एक महत्त्वपूर्ण कारण था। बड़े व्यापारिक देशों के लिए शुरू से ही भारत एक बड़ा बाजार बनकर सभी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। ये कंपनियाँ बाजार पर नियंत्रण कायम करने के उद्देश्य से हिन्दी का सहारा लेने के लिए विवश हो गए। उनकी यही विवशता, आज हिन्दी की शक्ति बन गए हैं।

आधुनिक विश्व परिदृश्य में हिन्दी अपनी बहुआयामी भूमिका के साथ तेजी से उभर रही है। सूचना क्रांति के इस दौर में हिन्दी संवाद व्यापार के क्षेत्र में प्रमुख भाषायी शक्ति के रूप में अपनी पहचान बना रही है। यही नहीं, सांस्कृतिक कारण से भी अनेक देशों में हिन्दी गहरी रुचि का केन्द्र बनती जा रही है। अन्य भाषाओं के साथ समभाव, सहभाव और समन्वभावपूर्ण की पक्षधर रहने के कारण ही, इसे सबने खुले मन से अपनाया है और इसी वजह से हिन्दी की अन्तराष्ट्रीय भूमिका का निरंतर विस्तार हो रहा है। मृणालिनी धूल की कविता लाडली बेटी है ये हिन्दी की पंक्तियाँ-

''पाथेय है, प्रवास में, परिचय का सूत्र है,
मैत्री को जोड़ने की सांकल है ये हिन्दी
यूं तो देश में कई भाषाएँ और हैं,
पर राष्ट्र के माथे की बिंदी है ये हिन्दी

हिन्दी के स्वरूप को स्पष्ट करती है। राष्ट्रभाषा हिन्दी भारत की आन बान शान है। आज हिन्दी की ध्वजा-पताका विश्व के कोने-कोने में लहराने के लिए तैयार है। यह विश्व में भारतीय अस्मिता का प्रतीक है। भारतीय जनता की अभिव्यक्ति का माध्यम हिन्दी, भारत की राजभाषा, राष्ट्रभाषा से आगे बढ़कर, विश्वभाषा बनने की ओर अग्रसर है।

आज हिन्दी विश्व में इतनी लोकप्रिय हो चुकी है कि 66वें गणतंत्र दिवस समारोह में हिस्सा लेने

भारत आए, अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामाजी को एक संवाददाता सम्मलेन के दौरान हिन्दी के वाक्य बोलते पाया गया। नमस्ते से भाषण की शुरुआत करनेवाले ओबामा ने जय हिन्द कहकर संभाषण समाप्त किया। इसी प्रकार हाल में विश्व हिन्दी दिवस के मौके पर हिन्दी भाषा पर आयोजित एक संगोष्ठी में नेपाल के उपराष्ट्रपति परमानंद झा का भी हिन्दी देशप्रेम दिखा जहाँ उनका कहना था कि हिन्दी ना केवल विश्व भाषा बन गई बल्कि यह संयुक्त राष्ट्र में पंजीकृत होने की पात्र भी बन गई है।

वैश्विक स्तर पर हिन्दी के प्रति रुचि और आकर्षण एकाएक महसूस नहीं हुआ। इसके पीछे एक महत्त्वपूर्ण कारण था। बड़े व्यापारिक देशों के लिए शुरू से ही भारत एक बड़ा बाजार बनकर सभी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। ये कंपनियाँ बाजार पर नियंत्रण कायम करने के उद्देश्य से हिन्दी का सहारा लेने के लिए विवश हो गई। उनकी यही विवशता, आज हिन्दी की शक्ति बन गई है। हिन्दी को दुनियाभर में लोकप्रियता दिलाने और उनके प्रचार-प्रसार के लिए प्रतिवर्ष विश्व हिन्दी दिवस और प्रत्येक चौथे वर्ष विश्व हिन्दी सम्मेलनों का आयोजन किया जा रहा है। अब तक नौ विश्व हिन्दी सम्मेलनों को विश्व के विभिन्न शहरों में सफलता के साथ आयोजित कर हिन्दी के प्रति प्रवासी भारतीयों के भावुकतापूर्ण व महत्त्वपूर्ण रिश्तों को और अधिक गहराई व मान्यता प्रदान की गई है।

हिन्दी का दायरा पूरे ग्लोव में फैलता जा रहा है। भारत के पड़ोसी देशों के अलावा हिन्दी अन्य एशियाई देशों, यूरोपीय देशों, अफ्रीकी देशों, ओशनियाई देशों और उत्तरी अमेरिका तक अपनी पक्की पैठ बना चुकी है। आज 137 देशों में हिन्दी भाषा समग्रता से विद्यमान है। इन देशों में हिन्दी एक विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाई जा रही है तथा विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों में हिन्दी का पठन-पाठन और शोध की लम्बी परम्परा की व्यवस्था है। चीन में हिन्दी उन चन्द विदेशी भाषाओं में शामिल है, जिसकी लोकप्रियता का अंदाजा चाइना रेडियो इंटरनेशनल की हिन्दी सेवा से लगाया जा सकता है। इसी प्रकार से रूस में हिन्दी पुस्तकों का जितना अनुवाद होता है, उतना शायद ही विश्व में किसी भाषा का होता है। ब्रिटेनवासियों की हिन्दी के प्रति रुचि प्रसिद्ध है। विद्वान गिल क्राइस्ट, मोनियर विलियम्स तथा ग्रियर्सन द्वारा लिखे हिन्दी कोष व्याकरण और भाषिक विवेचन के ग्रंथ को देखकर पता चल जाता है। आज ब्रिटेन में बी.बी.सी. से हिन्दी के कई कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। संयुक्त अरब अमीरात, जिसकी पहचान सिटी आफ गोल्ड दुबई से है, वहाँ एफ.एम. रेडियो के कम-से-कम तीन ऐसे चैनल हैं जहाँ हम चौबीसों घंटे नए एवं पुराने हिन्दी फिल्मों के गाने सुन सकते हैं। इसके अलावा दो अंर्तराष्ट्रीय स्तर की तथा यहाँ

से सम्पादित हिन्दी नेट पत्रिकाएँ abhivyakti.hindi.org तथा anubhuti.hindi.org के पते से विश्वजाल (इंटरनेट) पर मुफ्त में उपलब्ध हैं। इसी प्रकार श्रीलंका में लोग भारत से आई पत्र-पत्रिकाएँ जैसे- बाल भारती, चंदा-मामा आदि बड़े चाव से पढ़ते हैं। प्रख्यात नेपाली लेखक, कहानीकार एवं उपन्यासकार डॉ. भवानी भिक्षु ने अपने लेखनकार्य का श्री गणेश हिन्दी से किया। वहीं गिरीशवल्लभ जोशी, रूद्रराज पाण्डेतय, मोहन बहादुर आदि की एक-न-एक कृति हिन्दी में ही है।

इस प्रकार हिन्दी आज विश्व के विराट फलक पर अपने अस्तित्व एवं स्वरूप को सकारात्मक आकार दे रही है। भले ही आज वह देश की राष्ट्रभाषा से विश्वभाषा बनने की ओर अग्रसर है, किन्तु इस राह में उसे दुनिया की अन्य भाषाओं जैसे-चीनी, जापानी आदि से कड़ी टक्कर निरंतर मिल रही है। अमेरिका के उच्च शिक्षण केन्द्रों पर 2007-2011 तक किये गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि हिन्दी में छात्र कार्यक्रमों एवं उनमें भाग लेने वाले छात्रों की संख्या तथा शिक्षण-प्रशिक्षण की संख्या एवं उसमें भाग लेने वाले शिक्षकों की संख्या में तो निरंतर बढोत्तरी हुई है किन्तु कुल मिलाकर अन्य भाषाएँ हिन्दी से कई गुणा आगे हैं। इन भाषाओं का हिन्दी से आगे निकल जाने का मुख्य कारण, उन देशों की सरकारों का सुनियोजित ढंग से अपनी भाषाओं को आगे बढ़ाने के लिए किया गया बौद्धिक, भावात्मक और आर्थिक समर्थन है।

अन्य देशों की तुलना में भारत अपनी भाषा के प्रति उदासीन है। हिन्दी को भारत से जितना बौद्धिक, भावात्मक और आर्थिक समर्थन प्राप्त होना चाहिए था उतना नहीं हुआ। 2015 में राजस्थान स्वास्थ्य विज्ञान विश्वविद्यालय के दूसरे दीक्षांत समारोह में डी.लिट. की उपाधि से सम्मानित किए गए यू.एस.ए. से आए डॉ. नवीन नन्दाक ने हिन्दी में भाषण देते हुए कहा कि यह अजीब लग रहा है कि विदेश से आ रहे लोग हिन्दी में भाषण दे रहे हैं और हिन्दुस्तान में रह रहे लोग अंग्रेजी में हालाँकि इस कटाक्ष के बावजूद वक्ताओं ने अंग्रेजी में ही भाषण देकर अपनी राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रति नकारात्मक सोच एवं भावनाओं को प्रदर्शित किया। लड़खड़ाती अंग्रेजी के मोह ने भारतीय जन-मानस को इतना जकड़ लिया है कि गूगल और ई-मेल में हिन्दी की सुविधा होने के बावजूद इसमें हिन्दी पढ़ने व लिखने वालों की संख्या में कोई गुणात्मक वृद्धि नहीं हो पाई है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए सरकार द्वारा देश और देश के बाहर चलाये जा रहे कार्यक्रमों और उनको दिया जाने वाला आर्थिक समर्थन, अन्य-देशों की तुलना में कम है जिससे हिन्दी विश्व के भविष्य, और भविष्य के विश्व भाषा बनने की पथ में पिछड़ रही है।

आज भारतेंदु हरिश्चन्द्रजी की मातृभाषा के प्रति लिखी गई कविता की इन पंक्तियों-

''अंग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा बिन, रहत हीन के हीन।।
उन्नति पूरी हैं तबहिं जब घर उन्नति होय।

भारत और भारतवासियों में सपने संजोने की तथा हिन्दी के प्रति आत्महीनता के विलाप करने से रोकने की आवश्यकता है। आज वर्तमान विश्व की अपेक्षाओं के संदर्भ में हिन्दी की वर्तमान की सतर्क समीक्षा और स्वस्थ आलोचना की जरूरत है। इन बातों को सुव्यवस्थित ढंग से कार्यान्वित करके ही हिन्दी एक अधिक संवादशील विश्व की रचना में अपनी भविष्यगामी भूमिका का निर्वाह कर सकेगी।

संदर्भ सूची

1. मृणालिनी घुले, लाड़ली बेटी है ये हिन्दी, https://hindi-webdunia-com
2. नमस्ते से शुरूआत, हिन्दुस्तान समाचार पत्र, 28 जनवरी 2015, पटना, शशि शेखर, प्रधान संपादक, हिन्दुस्तान दैनिक
3. यू.एन. में हिन्दी.....होनी चाहिए, https://zeenews.india.com 12 जनवरी 2015
4. आचार्य यार्लगड्डा लक्ष्मी प्रसाद, हिन्दी का वैश्विक संभावनाएँ-https://static1.squarespace.com
5. राकेश शर्मा निशीथ, विदेशों में हिन्दी का प्रभाव-https://hi-m-wikibooks-org
6. डॉ. सुरेन्द्र गंभीर, अमेरिका में हिन्दी शिक्षण-https://divyanarmada.blogspot.com 29 अक्टूटबर 2014
7. वे विदेशों से आकर हिन्दी**.....** https://m.patrika.com rajasth jaipur 3/2/ 2015
8. भारतेंदु हरिश्चंद्र, मातृभाषा के प्रति-https://www.anubhuti.hindi.org

पी-एच.डी. शोधार्थी, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (बिहार)

गीतों के दिन पुनः फिरेंगे : एक नजर

● डॉ० कृष्णदेव मिश्र

कोई भी रचनाकार सायास सृजन नहीं करता। जबतक उसकी अंतर्वृत्तियों, भावों और विचारों के द्वारा विवश नहीं करती, जबतक व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीति जीवन से प्राप्त जीवनानुभव की विपुल राशि और उसका अनुभव संसार और उस संसार की वास्तविकताएँ छटपटाती नहीं तबतक साहित्य विशेषकर गीत, कविता, गजल जन्म नहीं ले सकती। वस्तुतः कवित कर्म यांत्रिक नहीं, बल्कि समाज परिवेश और वस्तुगत संसार की गहरी छाप का पयार्य है।

गया की धरती पर यहाँ की प्रायः साहित्यिक गतिविधि में हाथ बँटानेवाले साहित्यिक संस्थाओं से जुड़कर महान साहित्यकारों की जयन्तियाँ तथा विविध प्रकार के साहित्यिक उत्सवों में भाग लेने, कवि-सम्मेलनों में कविता सुनाने तथा विविध पत्र-पत्रिकाओं में भेज कर अपनी रचनाओं के माध्यम से जनमानस की भावनाओं को आन्दोलित करनेवाले डॉ० राम सिद्धासन सिंह की सद्यः प्रकाशित कृति "गीतों के दिन पुनः फिरेंगे" कविता की उदात्त साहित्यिक चेतना, राष्ट्र और संस्कृति के प्रति उनकी अविचल अनुरक्ति, आगे बढ़ने की प्रेरणा, अन्यायों तथा अनीतियों के विरुद्ध संघर्ष की तमन्ना, मानव मूल्यों के स्थापन का जुनून, आशावादी प्रवृत्ति इनकी कविताओं की मौलिक विशेषता है। कवि खुद स्वीकारता है-

जब अर्थ की तूती चारों ओर बोलने लगती है
अनाचारी की कभी न बुझनेवाली आग सुलगती है
जब अनीति निर्भय पोषण पाकर सुनीति हो ठगती है
स्वार्थ सिद्धि की तरांगिनी होकर निर्गंध मचलती है
और डूबने लगती उसमें पुरखों की थाती है
तभी रोशनी हठ करके हमसे कविता लिखवाती है

डॉ० ब्रजमोहन पाण्डेय नलिन के शब्दों में "वेदन ही सर्जना का प्रबल कारक है। प्रसूती की भीषण प्रसव वेदना सुन्दर बालक को जन्म देती है इसी तरह कवि की भीषण मनोवेदना सुन्दर काव्य की सर्जना करवाती है। संवेदनशील कवित के चारों ओर वेदना का संसार है। इसमें जीनेवाला कवि उससे प्रभावित न हो यह कैसे संभव है? कविवर डॉ० सिंह ने स्वयं स्वीकारा

है।" कविता के संबंध में हमारी यही मान्यता है कि कोई भी रचनाकार सायास सृजन नहीं करता। जबतक उसकी अंतर्वृतियों, भावों और विचारों के द्वारा विवश नहीं करती, जबतक व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक जीवन से प्राप्त जीवनानुभव की विपुल राशि और उसका अनुभव संसार और उस संसार की वास्तविकताएँ छटपटाती नहीं तबतक साहित्य विशेषकर गीत, कविता, गजल जन्म नहीं ले सकती। वस्तुतः कवित कर्म यांत्रिक नहीं, बल्कि समाज परिवेश और वस्तुगत संसार की गहरी छाप का पर्याय है।" इसीलिए कवित ज्ञान विज्ञान की अधिष्ठात्री सरस्वती से उस पीड़ा की याचना करता है जो उसे कवि कर्म को प्रेरित करती है–

वीणा के मृदु तार पर निज अंगुलियों की भीड़ हे।
काँप कर मैं गीत बन जाऊँ मुझे वह पीड़ दे।
वेदना की ऊर्मियों का
विकल हाहाकार है
किन्तु फेनिल ह्रास सजता
अश्रु पार वार है
चूमकर पावन चरण रो दूँ जहाँ वह तीर दे।
काँपकर मैं गीत बन जाऊँ मुझे वह पीड़ दे।।

कवित उसी पीड़ा में जीवन जीता है। उस पीड़ा की वाचिक अभिव्यक्ति ही उसकी कविता बन गई है। 'अशान्ति' शीर्षक गीत में वह कहता है–

अपनेपन की विकट समस्या
सबको सदा सताती।
ईर्ष्या द्वेष कलह की ज्वाला
सबको नित झुलसाती।।
शान्ति नहीं है हृदय-हृदय में
है बेचैनी छाई
दुर्दिन की यह घटा न जाने
आज कहाँ से आई
शान्ति खोजते सभी, किन्तु है
सबके साथ झमेला
ऐसे में कैसे रह पाये
कोई कही नहीं अकेला?

कवि के अंतर्मन में बहुरंगे भाव उमड़ते हैं। जीवन और जगत् में व्याप्त नृशंसता उसे झकझोरती है किन्तु कवि का उत्साही मन कभी हार मानने को तैयार नहीं। उसका विश्वास है कि बाधाओं से संघर्ष करता हुआ वह एक दिन अपने लक्ष्य को अवश्य प्राप्त करेगा। अत: वह अपने हमजोलियों को उद्‌बोधित और प्रोत्साहित करता है–

यों तो विघ्न सदा आते हैं
आँधी में मन घबराते हैं
किन्तु हृदय का धैय न छूटे
आशाओं का तन्तु न टूटे
जबतक यह विश्वास अटल है
साहस चकनाचूर नहीं है।
तबतक मंजिल दूर नहीं है।

कवि अपने भावकों को सत्कर्म की प्रेरणा और आशा का संदेश देते हुए जागृति का संचार करता है–

धरती पर वह परम पुरुष है
मन मन्दिर में नहीं कलुष है,
तुम चैतन्य विभा भास्वर हो
मन की जड़ता त्यागो
जागो! जागो, जागो!!!

इस गीत संग्रह में कवि के विविध भावों की कविताएँ भरी हैं। कवि प्रकृति में परमात्मा की सत्ता का दर्शन करता है। वह बार-बार उसे पुकारा करता है और उसकी सत्ता स्वीकार करता तथा उसके सामने घुटने टेककर हार स्वीकार करता तथा उसे हार में भी आनन्द की अनुभूति प्राप्त होती है। कवि कहता है–

तुम्हें पुकारा करता हूँ।
प्राची में मधु लाली छाई
कली-कली खुल-खिल मुस्काती,
कण-कण भू का जग जाता है
उदयाचल में रूप तुम्हारा
सदा निहारा करता हूँ!
तुम्हें पुकारा करता हूँ!!

कवि गीतों की खेती करता है। वह गीत लिखकर प्रसन्न होता है। वह उत्साहित है कि गीतों की फसल उग आई है। वह कहता है–

मैंने बोये बीज वर्ण के
फसल गीत की उग आई रे।
लहराती आयी सुदूर से
भावों की निर्मल जलधारा।
बाधाओं के विपुल शत्रु से
जूझ ढूँढ़ती कूल किनारा।
पाषाणों के गर्व दलन कर
पर्वत से भी टकराई रे।
मैंने बोये बीच वर्ण के
फसल गीत की उग आई रे।

सम्प्रति गीतों की अवसन्न परम्परा को देखकर कवि को चिन्ता होने लगी थी। आज के कवि गीतों की भाव-प्रवण परम्परा से कटते जा रहे थे। कविता प्रायः उनके क्षणिक विचारों में सिमटती जा रही थी। कवि मानव जीवन को सजाने सवारने के लिए गीतों की महत्ता पर बल देता है। उसे विश्वास है कि 'गीत' जैसी विधा को न जीवन से अलग किया जा सकता है, नहीं तो साहित्य से। गीतों की आवश्यकता मानव को फिर महसूस होगी और गीतकार गीत लिखने में प्रवृत्त होंगे। अतः उसका कहना है कि गीतों के दिन पुनः फिरेंगे।

कवि कहीं जीवन-संघर्षों तथा प्रतिकूल परिस्थियों से पस्त, हताश, निराश मानवों में आशा और उम्मीदों की संजीवनी का संचार करने हेतु दुखियों का आह्वान करता है-

बैचैन हैं हवाएँ सब ओर बेकली है
कोई नहीं बताता किश्ती किधर चली है
मझधार है भँव है या पास है किनारा
यह नाश आ रहा या सौभाग्य का सितारा
जो राह है हमारी उस पर दिया जला दे
बुझती हुई सिखा को संजीवनी पिला दे

सामाजिक जीवन में परिव्याप्त नैराश्य को कवि ने बड़े सजीव ढंग से उकेरा हैं। ऊँचे-ऊँचे अंचल से गरीबों/दलितों और पीड़ितों के उद्धार की चर्चा करनेवाले सामंती विचार वाले बुर्जआ नेताओं पर कटाक्ष करता हुआ कवि कहता है-

तुम क्या जानोगे पर पीड़-पीड़ा, जब पीड़ा तुमको हुई नहीं।
निर्धन की होटकी जलती है
धनवानों की टोली में

साँसों से आह निकलती है
निर्धन समाज की बोली है
लेकिन तुम तो धनवान रहे, निर्धनता तुमको छुई नहीं।
तुम क्या जानोगे पर पीड़ा, जब पीड़ा तुमको हुई नहीं।।
तुम गला घोंटते आये हो,
निर्बल जन के अरमानों का।
इन्सान बन पी रहे खून,
तुम दीन दुखी इन्सानों का।
दुखियों के दुख क्या जानोगे, मानवता तुमको छुई नहीं।
तुम क्या जानोगे पर पीड़ा जब पीड़ा तुमको हुई नहीं।।

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' के सिद्धांत पर जीनेवाले पूर्वजों के आदर्श को यादकर तथा भारतमाता के वर्तमान सपूतों की अकर्मण्यता और दरिन्दगी को देखकर कवि की आत्मा कराह उठती है। उसी की आवाज है इन पंक्तियों में–

क्या यही है? / मेरे सपनों का भारत / कर्त्तव्यपरायणता बोध / और / कण की दानशीलता / क्या भूल गयी / आज की मानवता / दधीचि / का त्याग / और / अभिमन्यु का बलिदान / एक ही बेटा होता है / काफी / अपनी माँ की अस्मत की / रक्षा के लिए / परन्तु / आज नब्बे करोड़ बेटों के कानों पर / जूँ नहीं रेंगते / और / मैं बीच चौराहे पर / नग्न हुई जाती हूँ।

यह वेदना है भारत माता की। हमारी जननी जन्मभूमि की, किन्तु अरबों की संख्या में भारत माँ की संतान क्लीव और निर्लज बन देख रही है उसके चीरहरण को। उस तरह की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा राष्ट्रीय परिस्थितियाँ, भारतवासियों की यह अकर्मण्यता, राष्ट्रनायकों की घृणित स्वार्थवृत्ति कवि को बार-बार झकझोरती है। फलतः कविता का कोई न कोई स्वर फूट पड़ता है। कवि अपनी कलम के माध्यम से एक ओर यदि फरियाद करता है तो दूसरी ओर बगावत भी।

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, स्वामी धरणीधर कॉलेज, परैया, गया

कविता को सशक्त बनाता 'रीढ़'

● डॉ. अर्चना त्रिपाठी

'रीढ़' श्रीराम तिवारी का सद्यः प्रकाशित काव्य संकलन है। जैसा कि शीर्षक से ही ज्ञात होता है कि 'रीढ़' जो कविता की वैचारिकी है। वह जितनी मजबूत और शख्त होगी कविता उतनी ही भाव व असर सम्पन्न होगी।

श्रीराम तिवारी ने जितनी रचनाएँ की उतनी संख्या में वे छपे नहीं, समीक्षकों ने उन्हें वह स्थान नहीं दिया जो उन्हें देना चाहिए था। इसके बावजूद वे (श्री राम तिवारी) निरंतर रचनारत रहे और आज भी उम्र के अठहत्तरवें वर्ष में भी निरंतर सृजनशील हैं।

18 अगस्त 1936 में राम शहर बड़हरा 'आरा' में जन्में श्रीराम एक जिंदादिल व्यक्तित्व के इसान हैं। हिंदी की नयी कविता को वे अपने शख्त और कोमल विचारों से उम्र भर सींचते रहे हैं फिर भी ये दीगर बात है कि इससे पहले कायदे से इनका एक भी काव्य संग्रह नहीं प्रकाशित हो सका। इसे हिन्दी साहित्य की विडंबना ही कहेंगे। 'रीढ़' प्रथम कविता-संग्रह के रूप में पाठकों के समक्ष उपस्थित हुआ है।

पुस्तक का नाम
रीढ़
कवि का नाम
श्रीराम तिवारी
प्रकाशन
शब्द प्रकाशन
संस्करण
प्रथम 2013
मूल्य
200 रु०

श्रीराम तिवारी की सृजनात्मकता में एक खास किस्म की जो पार्थिवता है, पदार्थी चेतना है, वह इनके राजनीतिक, सामाजिक लगाव का ही परिणाम है। इनमें जीवन-यथार्थ को उसके सभी रूपों और कोणों में सम्मलित कर एक नये रास्ते की जो तलाश, स्पंदन गति और विकास की अभिवांछा है, वह सतत उर्ध्वमुख तथा विकासशील है। इस तरह श्रीराम तिवारी पुनर्कथन और परावर्तन की अपेक्षा पुनःसृजन तथा परिवर्तन के कवि के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं।

श्रीराम की कविता में जो इतिहास बोध हमें दिखता है वह किसी खास समय का हिस्सा होता हुआ भी उससे विलग और अखंड है। कई बार वह भाषा की ऊपरी सतह को मात्र छूता हुआ ही धड़ से निकल जाता है और कई बार भाषा की सतह को बेधता हुआ उस 'रीढ़' तक पहुँच जाता है जो किसी भी व्यक्ति, समय साहित्य व समाज का अयस्क स्तंभ होता है।

तिवारीजी की कविता रुढ़ अथवा प्रचलित अर्थ में वस्तु तथा रूप की व विषय तथा विधान की एकता या अलगाव का प्रमाण प्रस्तुत नहीं करती और न ही वह अकादमिक ढंग से वस्तु सत्ता को बरतती हुई लगती है, बल्कि अपने क्राफ्ट से अंतर्वस्तु को रूप से सजाती व मिलाती हुई एक मुकम्मिल जैव संरचना के रूप में- एक सजीव संरचना के रूप में सदेह 'रीढ़' की तरह ही तनी हुई दिखलाई पड़ती है। कभी-कभी इनकी कविता इतनी मधुर और मुलायम लगती है कि भाषा के वितान से लालित्य और माधुर्य झरता हुआ झलकता है व कई बार वह इतनी शख्त और प्रहारक होती है कि वैचारिक संघर्ष में शस्त्रास्त्र बन जाती है। यह सब कुछ उसी कविता में संभव है जिसमें कवि भाषा के भीतर एक और भाषा गढ़ता है क्योंकि भाषा की तहों में ही वस्तु की धात्विकता अंतर्निहित होती है। श्रीराम उसी धात्विक खनक के कवि हैं। तथा इनकी कविता उस मिथ को भी तोड़ती है कि वह लिजलिजी भावुकता के अवलेह में पगी हुई नहीं रहती, बल्कि मार्मिक भावों व उर्जस्वित वैचारिकता के अयस्क आंच में तपी हुई होती हैं। श्रीराम की कविताएँ यद्यपि संवेदना-सिक्त कविताएँ हैं, फिर भी उनमें विचार का ताप, तेज और ओज मिला रहता है, यही कारण है कि कवि की कविता गलदश्रु भावुकता से आगे वैचारिक प्रभविष्णुता उत्पन्न करने वाली कविता है।

जिस तरह समाज का इतिहास एक निरंतर प्रक्रिया है, वैसे ही जिस दिन कविता रुक या चूक जाएगी, मानवता मर जाएगी। श्रीराम उसी अमर्त्य मानव के कवि हैं, श्रमशील जन के कवि हैं, सृजनरत मनुष्य के कवि हैं, परिवर्तन के लिए संघर्षशील मनुष्य के कवि हैं, ये बोध में मन तथा मन में बोध के कवि हैं। युगबोध के कवि हैं।

संग्रह में इनकी पहली कविता 'आस्था' की अन्तर्कथा भक्ति और मुक्ति के मिथकीय सुख के भाव को निरस्त करती हुई चेतना के उजास में व्यक्ति-मन की कविता है जो अन्त में जन, मन और आत्मा की अन्तर्कथा बनती है। जो पीछे छूट गए, कैसे हैं जो हमसे टूट गए, फिर क्यों मन में दीपते हैं आगत के दीये आँख मूँदकर छिपते हैं, जो अनरीते ही रीत गए, पीछे छूट गए, टूट गए- ये तो कवि की आस्था के आधार हैं। इनकी कविता इसका भी उदाहरण है कि कविता की भाषा किस प्रकार पदार्थी सचेतना से संवलित हो जाती है तथा चेतना के अरुण-रवि रंग में रंग जाती है। वास्तव में जो समस्या को समाधान-निश्चय, आतुरता-निरूपायता को आकांक्षित गगन विस्तार देते हैं, वे ही तो दिशा कंठ हैं, आगत उत्क्रांति के अगुआ।

जो थोड़े से कवियों-जैसे केदारनाथ सिंह, कुमारेन्द्र राजेश जोशी, अरुण कमल ओलोक धन्वा, मंगलेश डबराल, ज्ञानेन्द्र पति ने विषय को विधान में तब्दील कर दिया है, उन्हीं की पंक्ति में श्रीराम ने तनिक और आगे जाकर मुक्तिबोध की उस परम अभिव्यक्ति संभवा क्षितिज को भी छूने की कोशिश की है, जहाँ भुक्ति का अरुण कमल हर क्षण काँपता रहता है।

इनकी समस्त कविताओं पर एक दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि प्रकृति का रंग भी इनकी कविताओं में प्रयुक्त है। तिवारीजी जब प्रकृति-उपकरणों से कविता का ताना-बाना बुनते हैं तो प्रकृति अपने आदिम रूप में रहते हुए भी अपने हिरण्य संकेत-शिविर से भोर के फागुनी स्पर्श का, अँकुआयी टहनियों और वन सुग्गों का संसार रच जाती है, तब ताजे गुलाब और फूल बिछौनों का पठारी मौसम भी अपने बासंती रूप में अरुवामा से भर जाता है। इसी रूप में इनकी पठार पर लिखी कविता के ये प्रथम कवि हैं।

श्रीराम के पास नई और ताजी कविताएँ हैं और बहुप्रशंसित पूर्व की प्रकाशित कविताएँ भी जिनमें रामरतन का फैसला, मनबोध, जूलूस में चल रही वह औरत ऐतिहासिक महत्व की कविताएँ हैं। लम्बी कविताएँ कवि के व्यापक तथा विस्तृत अनुभव और जद्दोजहद का जीवन सर्ग लिए रहती हैं। जिसमें जीवनानुभाव का विविध और व्यापक आयाम भी रहता है। 'राम रतन का फैसला' कविता में 'झोपड़ी' भाषा का एक सीधा-सादा शब्द भी है और राम रतन के आदमी होने की तल्ख पहचान भी। वस्तुतः झोपड़ी गाँव का विरोधी यथार्थ है। जिस यथार्थ को श्रीराम तिवारी ने शब्द और अर्थ दिया है उसी तरह लम्बी कविता 'लोक वार्ता' यहाँ पूरी नहीं होती- यह कहकर पूँजी सत्ता और जिंदगी के गर्म रास्ते तथा कुहरे में रमते इतिहास के प्रसंग को कवि ने एक नया अर्थ दिया है। कवि पुरानी मान्यताओं और जीर्ण-शीर्ण मूल्यों को आज की राजनीति में प्रतिफलित होते हुए देखता है तो तल्ख टिप्पणी करता है। किसी भी साहित्यकार की दृष्टि मुक्ति पर नहीं, 'शासन' और इनाम पर होती है। इस तरह कवि उस अर्थ-संबंध की बुनियाद पर बने सामाजिक संबंधों तथा सामाजिक संरचनाओं एवं शासन सत्ता के स्वभाव को खोलकर रख देते हैं। वे जानते हैं कि आर्थिक आधार ही सामाजिक संरचना का भी मूलाधार है। इस प्रकार श्रीराम तिवारी की कविता में विन्यस्त वैचारिकी की एक वैज्ञानिक प्रविधि और पद्धति सक्रिय रहती है। कवि यदि विडंबना और विसंगतियों पर व्यंग्य भी करते हैं तो वह व्यक्ति केन्द्रित न होकर सामाजिक व्यवस्था पर केन्द्रित हो जाता है तथा उस स्थिति में भी सौम्य और शालीन तरीका कायम रहता है इनके बावजूद पाण्डु-परम्परा और कर्म काण्ड प्रथा का बखिया भी उधड़ जाता है।

कर्मकाण्डी आदत से देखने पर आपको सबकुछ सृष्टि का विधान लगता है। किंतु नृत्य की मुद्रा में आकर कहने पर उसे यह सब आपकी संचालन क्षमता का कमाल लगता है। कथित विकास के बारे में कवि जब कुछ इस संग्रह में कहता है तो गाँव और शहर

के बीच की खाई को भी दिखाना चाहता है और कहता भी है कि इस घटना का सूत्रधार कौन है? तो लोग नाम लेने से घबड़ाते व डरते भी हैं।

वस्तत: व्यस्थाएँ और संरचनाएँ किस प्रकार साठ-गाँठ कर अपने अस्तित्व को कायम रखती हैं, उसका बहुत ही अच्छा चित्रण श्रीराम तिवारी ने किया है। उनके पैने चुभते शब्द हैं- एक तरफ मिश्रित अर्थव्यवस्था है वहीं दूसरी तरफ विचारों को जोड़ने की उसकी क्षमता तथा तीसरी तरफ बीबी-बेटे की ममता तो चौथी तरफ प्रतिक्रिया के हित में कायम है संकटमोचनी मान और रुझान की समता। सामंतवाद, पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के गठजोड़ को तथा सत्ता और न्याय के कथित नारे के खोखलेपन को उजागर कर कवि ने समतामूलक समाज निर्माण की भिन्न शक्तियों और उनकी सक्रियताओं का भी जिक्र बखूबी किया है। उन शक्तियों में कई-कई तबके के लोग भी हैं और सबसे बढ़कर कवि पंक्तिबद्ध जुलूस में चल रही औरत को रेखांकित करना चाहते हैं। जिसके हाथों में लाल झंडा है और पैरों में गति। कवि जुलूस को देखता है कि उसकी गति के साथ औरत की गति कैसे मिलती है। यूँ तो वह पीछे चल रही है किंतु वहीं सबसे आगे हैं- जुलूस के हाथ में क्रांतिकारी परिस्थिति का झंडा है। जुलूस औरत का अपना है। जुलूस उस औरत का एक मात्र बड़ा सपना है। लाल रंग की धार में रंग गई है वह औरत।

यहाँ औरत का रूपांतरित स्वरूप व वेग ही कविता है। मध्यमवर्ग का कवि यहीं उसके पीछे चलता। इस तरह 'मनबोध' कवि की प्रशंसित और पूर्व प्रकाशित कविता है यह शमशेर की कविता 'दो पहाड़ों को कहुनियों से ठेलता आदमी' की याद को ताजा कर देता है।

भरिया मनबोध का शब्द-चित्र कविता में चित्रित है और चित्र में कविता। उपमा-उपमेय और प्रतीक की दृष्टि से भी इनकी कविता अत्यंत ही महत्वपूर्ण है-

'भरिया की खाँची में ठोलो अंगार या गुलशन का प्यार, दोनों धरती पर दहकते हैं। श्रम की बुनियाद पर गंझू जपार के शहर के शरीफ चहकते हैं।'

मनबोध के विभिन्न और व्यापक रूपों का चित्रण करके कवि ने उसकी श्रम-शक्ति तथा श्रम चेतना को ही प्रकट किया है मनबोध पूरी तरह मिट्टी का बना जीवित पुतला है। मनबोध माटी को गंभीरता से जीता है व मुठ्ठियों में शब्दों को पीता है। वास्तव में मनबोध कवि-सृष्टि का सजीव श्रमजीवी है, जो अपने छोटेपन में भी बहुत बड़ा है तथा अपनी उपस्थिति में वैश्विक। जब मनबोध सही उत्तर बनता है, आगे-आगे चलता है कवि जुलूस में चल रही औरत को आगे कर देते हैं तथा मनबोध तो आगे चलने वाला शक्ति तो है ही।

इस प्रकार श्रीराम की 'लोकवार्ता' भी उच्चकोटि की कविता है। और इस संग्रह की खूबसूरत कविताओं में एक कविता 'रूपांतरित हो रहे कविता में रीढ़ की तरह' है। इस कविता में कवि ने ऐसी भाषा को गढ़ा है जिसमें बगीचे हैं, मंजर है, फूल और बालियाँ हैं और कोयल है, साथ ही मौजूद है- कोयल से काले तन में उतनी ही मीठी

बोली, मुर्गे की तरह गर्दन चलाकर तर-बतर ठेला खींचना, जीवन-राग के चारों ओर मोर की तरह नाचना, गोल सुग्गों की तरह उठा लेना पूरा पेड़, पढ़-लिखकर कई सदियों में रहने वाले लोगों की एक जात होती है कि 'वे जिस खोल में रहते हैं उसी की शिकायत करते हैं और आवेश में एक दूसरे को आत्महंता कहते हैं।'

अब यह कहने की जरूरत नहीं रह गई है कि श्रीराम तिवारी वस्तुमुखी चेतना के शिल्प-सजग और भाषा-वैभव के कवि हैं। कहीं-कहीं वे भाषा के रुख को राजनीतिक ऊष्मा प्रदान करते हैं और कई बार भाषा को नदी के जल-सा बहाव दे देते हैं तथा कहीं-कहीं ऐसी भाषा रचते हैं जो भाषा एक-एक साँझ, एक-एक भोर एवं एक-एक चिड़िया के ठोर रंगती है तथा एक-एक नदी पर पैरों और खुरों के निशान गिनती है। कवि कई बार भाषा को ही वस्तु बना देते हैं जो कि एक शिद्धहस्त कवि के लिए ही संभव है। पंत, निराला, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल, नगार्जुन आदि कवियों ने प्रमुख व्यक्ति-चित्र भी रचे हैं और महान व्यक्तियों पर अपनी लेखनी भी चलाई है। श्रीराम तिवारी ने भी उसी परम्परा में वानगॉग, रघुवीर सहाय, जानकीवल्लभ शास्त्री, रामेश्वरनाथ तिवारी आदि व्यक्तियों पर अपनी लेखनी चलाई जो अद्‌भुत है। चंद्रभूषण तिवारी बिहार जलेस के संस्थापक सचिव और समालोचक रहे हैं जिनकी याद में लिखी तिवारीजी की कविता 'व्यक्ति जिससे पूरा होता है एक शहर' में की स्मृति-चित्र की पंक्तियाँ देखें, दृष्टव्य हैं- ''आरा एक शहर नहीं, जीवन-शब्दों का मित्राकाश है, जहाँ हमारे दिल-दिमाग में जल-प्रपात के दुधिया धार की तरह गिरते रहते हैं चंद्रभूषण तिवारी, हम में प्रदीप्त विभूति।''

इस प्रकार जब सब जगह निराशा मौन शिथिलता व आत्म केन्द्रीयता का माहौल है। श्रीराम तिवारी अपने अनुभव ज्योत शब्दों से हमें झकझोरने के लिए और स्वयं अपने आप को सक्रिय और सप्राण करने के लिए कविता के आकाश में अपने संग्रह को लेकर प्रस्तुत होते हैं। इनके यहाँ शब्द मात्र शब्द नहीं होते, संचेतना के सार्थक अन्तस होते हैं। कविता की मरुस्थली को जिन्होंने अपने अथक श्रम से सींचकर कविता का नया शब्द संसार गढ़ा है, उन कवियों में श्रीराम तिवारी भी एक नाम है।

श्रीराम तिवारी की यह पुस्तक प्रकाशित हुई, निश्चय ही यह प्रशंसनीय है और उनक पाठकों तथा उनके चाहने वालों के लिए सुखद भी है। इसमें संकलित कवितायें मनुष्यता की रीढ़ पर टिकी हुई हैं। वैसे भी रीढ़ से अलग किसी का वजूद नहीं होता। यह पाठकों को आह्लादित तो करेगा ही साथ ही उन्हें पृथक-पृथक काव्यास्वाद भी करायेगा।

श्री अरविंद महिला कॉलेज, पटना। मो०-9708329867

चोंच में आकाश सौंदर्यात्मक अन्विति से परिपूर्ण गीत

● डॉ० सविता मिश्र

पूर्णिमाजी का प्रखर चिंतक रूप उनके गीतों में स्पष्ट परिलक्षित होता है। मुक्त गगन में खिल-खिलाकर हँसते, दहकते पलाश को स्वार्थ के वशीभूत होकर बैठक के एक गमले में रोपा हुआ देखकर वे व्यथित हो उठती हैं। संवेदनहीन होते जा रहे मनुष्य पर वे प्रहार भी करती हैं तो बहुत ही ठहरे हुए रूप में, लेकिन उनका यह ठहरा हुआ रूप हमें भीतर तक हिलाकर रख देता है।

सुप्रसिद्ध कवयित्री पूर्णिमा वर्मन का नया गीत-नवगीत संग्रह 'चोंच में आकाश' पाँच भागों में विभक्त है। संग्रह के सभी गीत प्रवाहपूर्ण अभिव्यक्ति, संवेदनगत सघनता, रससिद्ध बौधिकता, लालित्यपूर्ण प्रतीकात्मकता एवं सौदर्यात्मक अन्विति से पाठकों को अपनी ओर बरबस ही आकृष्ट कर लेते हैं। 'स्वस्ति-गान' के अंतर्गत गणपति की वंदना का साथ-साथ घट और दीप की वंदना भी है, जो शरीर और आत्मा के रूप में विद्यमान है। गणपति की वंदना करते हुए कवयित्री जीर्ण-शीर्ण संस्कृति के पथ का नव-निर्माण करने हेतु प्रतिपल उत्सुक प्रतीत होती हैं। वे कहती हैं-

भारत की इस पुण्यधारा से
अन्तः कलह हरें
ज्योति से झिलमिल दीप धरें

'फूल-पान' के अंतर्गत अमलतास, कचनार, कमल, गुलमोहर, चंपा, नीम, पलाश, बोगनविला और ताड़ आदि शैशवकालीन अंतरंग साथियों के अंतरंग साहचर्य के अत्यंत सुंदर चित्र हैं। 'देश-गाम' में देश-विदेश की भिन्न-भिन्न छवियाँ, 'मन-मान' में अंतरंग भावाभिव्यक्तियाँ तथा 'धूप-धन' में प्राकृतिक छवियाँ दीप्त हो उठी हैं। धूल भरी गलियों में कानों में घुँघरू-सी कलियाँ लटकाए हुए ये अमलतास जब मौसम की टेर पर मुँडेर लाँघ कर झाँक उठते हैं तो पूर्णिमाजी की आँख में उनका सौंदर्य जैसे अटक कर रह जाता है और वे कह उठती हैं-

फूल-फूल सजी हुई धूल धूल गलियाँ
कानों में लटकाईं घुँघरू-सी कलियाँ

झुक- झुककर झाँक रही
धरती को बार-बार
हरे हरे गुंबद से ध्वजा पीत फलियाँ
मौसम ने टेरा
लाँघ के मुँडेरा
फैला सब जग उजास।

यहाँ हवाओं में बजते मुँडेरों पर सजते कचनार के दिन हैं। कचनार अपने संपूर्ण सौंदर्य के साथ खिला हुआ है। उसकी स्वप्निल चाल और झिलमिल रूप को रूपायित करता उनके गीत का एक अंश उद्धृत है।

खिड़कियाँ, खपरैल, घर, छत
डाल, पत्ते आँख मीचे
आरती-सी दीप्त पंखुरी
उतरती है शांत नीचे
रूप झिलमिल
चाल स्वप्निल
फिर दिशाओं ने
भजे कचनार के दिन

इन गीतों में हाथ हिलाता हुआ गुलमोहर का गुच्छा, मरमरी उंगलियों में मूँगिया हथेली, चितवन की चौप? पर प्यार की पहेली, वृक्षों पर आवारा कोयल का धमाल आदि न जाने कितने बिंब हैं जो सहज ही मन में बस कर रह जाते हैं। ये गीत और नवगीत शिल्प और बिंब विधान की दृष्टि से अत्यंत सुंदर हैं और संवेदन के स्तर पर जीवनोन्मुखी हैं।

'जीने की आपाधापी' गीत में बहुत कुछ छूटते चले जाने का दंश मन को भिगोता चला जाता है। पूर्णिमाजी ने बड़ी ही सरल सहजता से इस सत्य को उकेरा है-

रेलों और
जहाजों में
जाने कैसी दौड़ थी जिसमें
अपना मन ही नहीं सुना।

पूर्णिमाजी की ठहरी हुई भाषा के अद्‌भुत प्रवाह में मन भीगता ही चला जाता है, जब वे कहती हैं-

कितने कमल खिले जीवन में
जिनको हमने नहीं चुना।

ऐसा लगता है कि ताड़-वृक्षों के अद्‌भुत सौंदर्य से अभिभूत पूर्णिमाजी ने उन्हें बहुत निकट से देखा है। मरूभूमि पर हरियाली का हाथ रखे हुए, हरसिंगार रात-रात भर झरते हुए, मंत्रों की तरह बजते हुए आदि न जाने कितने सुंदर बिंब हैं। ताड़-वृक्षों की निश्चलता उन्हें गहन ध्यान में लीन योगी की तरह प्रतीत होती हैं। वास्तव में उनकी प्रतीकात्मकता और बिंबात्मक अभिव्यक्ति अद्‌भुत है-

गहन ध्यान में लीन
हवा में
धीरे-धीरे हिलते
लंबे-लंबे रेशे बिलकुल
जटाजूट से खिलते
निपट पुराना वल्कल पहने
संत पुरातन कोई न गहने
नभ तक ऊपर उठे हुए हैं
धरती के अभिजात
निश्चल,
ताड़ों की क्या बात!

पूर्णिमाजी का प्रखर चिंतक रूप उनके गीतों में स्पष्ट परिलक्षित होता है। मुक्त गगन में खिलखिलाकर हँसते, दहकते पलाश को स्वार्थ के वशीभूत होकर बैठक में एक गमले में रोपा हुआ देखकर वे व्यथित हो उठती हैं। संवेदनहीन होते जा रहे मनुष्य पर वे प्रहार भी करती हैं तो बहुत ही ठहरे हुए रूप में लेकिन उनका यह ठहरा हुआ रूप हमें भीतर तक हिलाकर रख देता है-

नवता नए व्याकरण खेले
परंपरा के उठे खटोले
आभिजात्य की नई दुकान
बोनसाई के ऊँचे दाम
हम चुप पड़े देखते ऐसे
जैसे हों कागज के खोखे।

कल्पनाशील मन के साथ पूर्णिमाजी का यथार्थ बोध और यथार्थ को पूर्णतः सम्प्रेषित करने की सामर्थ्य उनके गीतों को अद्वितीय बना देती है। लोक-धर्मिता को अत्यंत सरल-सहज कलात्मक शिल्प में उकेरते हुए पूर्णिमाजी 'बोगनविला' गीत में अँगनारा की तपन से बेखबर मुँडेर पर झूलते बोगनविला के अनेकानेक चित्र उकेर डालती हैं। ज्वरग्रस्त अंबर-तप्त अँगनारा, कामकाज का न अच्छा न लगना, मगर इन सबसे बेखबर लहराता बोगनविला।

जीना
बेहाल हुआ
काटें कंगना, बिछुआ
काम काज भाए नहीं
भाए मीठा सतुआ
लहराए मगर मुआ
हूला मुँडेरे पर बोगनविला
ओ पिया!

'हरी घाटी' में गीत में हरी घाटी की हवा से की गई बातें हैं, झरनों की हँसी है, सजी हुई रातरानी है। प्रकृति के अद्‌भुत सौंदर्य को अपने मन के भीतर सहेजे हुए, वे कह उठती हैं-

गाड़ कर
पेड़ों के झंडे
बज रहे वर्षा के मादल
आँजती वातायनों की
चितवनों में साँझ काजल
और बूँदों की मधुर आहट
रिझाने लग गई है।

इतने सुंदर कला-शिल्प में शरद का इतना सुंदर चित्र पूर्णिमाजी के अलावा भला कौन उकेर सकता है-

धूप में फिर
गीत कोई गुनगुना है
और
नभ के हाथ
सूरज झुनझुना है
फिर गली में खो गए हैं दिन
हरे अखरोट लेकर

'चिरैया' गीत में तो पूर्णिमाजी ने जैसे चिड़िया वीडियो फिल्म ही बना डाली हैं। उसका फुरफुराना, दूब पर चुगना, झुंड में चहचहाना, अन्य चिड़ियों के साथ मिलना-बिछुड़ना, उड़ते-उड़ते अचानक कुएँ पर रुक जाना, खेत पर पहुँचना, बिजूके से डरना, पलटकर उसे देखना और हर दिन घर के आँगन में आना और यहाँ तक कि आँगन के प्रेम में खुद को

लुटा डालना। अंतिम पंक्तियोँ तक पहुँचते-पहुँचते पाठकों का मन भोली-भाली गतिशील, त्वरा संपन्न चिरैया के नेह भरे मन के साथ-साथ उड़ने लगता है।

संग्रह के प्रतिनिधि गीत 'चोंच में आकाश' में पंखों में उल्लास, साँस में विश्वास और चोंच में आकाश लेकर उड़ता हुआ एक पाखी है, जो पूर्णिमाजी की काव्य-संवेदना का शीर्षबिंदु है, उनकी संघर्ष चेतना की सशक्त प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। उनकी सर्जनात्मक कला की शक्ति ही तो है जिसके बल पर दुपहरी धूप के दोने भेजती है, मौसम का पत्र बादलों से भीग उठता है।

'चोंच में आकाश' संग्रह से गुजरते हुए मुझे नचिकेताजी के शब्द याद आ रहे हैं जो उन्होंने पूर्णिमा जी के विषय में कहे हैं- ''भारत की बेटी धन्य है, जिसकी नस-नस में भारत की मिट्टी की सुगंध, सामाजिक परिवेश प्रकृति का अप्रतिम सौंदर्य और सांस्कृतिक विरासत अपनी पूरी अस्मिता के साथ जिंदा है।''

'धूप-धान' शीर्षक के अंतर्गत जो गीत हैं उनमें वसंत की आवारगी मन को मोह लेती है। पूर्णिमाजी के उन्मुक्त मन के साथ घूमता आवारा वसंत पटरी से पर्वत तक, पर्वत से मंदिर तक और संतों की कुटिया तक न जाने कहाँ घूमता रहा। बड़े ही सादगी भरे अंदाज में वसंत की आवारगी पर मुग्ध होकर वे कह उठती हैं-

अब साल
वसंत यों ही आवारा घूमा
मेरी तरह।

मौसमी वसंत के गीतों की गुनगुनाहट में डूबा उनका अकुलाया मन कभी महुए की गंध से भावविभोर हो उठता है तो कभी मलयानिल झोंकों में डूबते दालानों में जा पहुँचता है। इन गीतों में अनेकानेक बिंब बिखरे पड़े हैं-

सरसों-सी
खिली-खिली
अनजाने रस्तों पर
खरहे-सी दौड़ पड़ी
क्वाँर का कुँआरापन
जाड़े की धूप।

पूर्णिमाजी के गीतों में एक ओर बूँदों से भीगा मौसम का पत्र है, असहाय जेठ का महीना है, दीवारों पर उड़ती आग है, झरते पीले पात हैं, कुम्हलाती धरती है, दूसरी ओर बूँदों के बजते हुए संतूर हैं, मल्हारों के सुखद पद रचते बादल हैं। हवा में बजते ताड़ के करतल हैं, आह्लादित सागर हैं, धरती पर फगुनाई होती है, धरती के आँगन में हरियल मनुहारे हैं और इन सबके साथ-साथ यादों की खुलती हुई मीठी-मीठी गाँठें हैं। प्राकृतिक

सौंदर्य की वीथियों में रचा-पगा कवयित्री का मन कभी अमलतास के सोन हिंडोलों में बैठ उड़ने लगता है तो कभी टपकती पकी निबौरी के साथ हो लेता है। कभी बिगुल बजाती दौड़ती फगुनाहट के साथ दौड़ पड़ता है तो कभी हवा से बात करती हरी घाटी के साथ लहलहा उठता है।

संश्लिष्ट सामाजिक जीवन, उपभोक्तावादी संस्कृति और वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप जो परिवर्तन प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, पूर्णिमाजी अपनी सजग लेखनी से इस परिवर्तन की धारा को मोड़ने का प्रयास करती दिखाई देती हैं। सभ्यता के बदल जाने पर भी उनका मन पूरी तरह से भारतीयता में डूबा है-

अब भी हिंदी गानों पर
मन विह्वल होता है
अब भी मन का कोई कोना
गाँव में होता है
भाषा बदली
रामायण सत्संग नहीं बदला।

इन गीतों में बीते हुए साल के अनेक घटनात्मक दृश्य हैं। दुर्घटनात्मक परिदृश्य, भूकंप, बारूदी माहौल आदि को कवयित्री ने अत्यंत जीवंत अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनके मन में सतत स्पंदित होती भारतीयता की अनेकानेक गूँज-अनुगूँज उनके गीतों में सुनने को मिलती है। सांस्कृतिक विरासत को संजोये उनका भारतीय मन विदेश में सड़कों पर व्याप्त सन्नाटे से क्षुब्ध होकर अपने देश के चौराहों में चाय की दुकानों पर बार-बार जा पहुँचता है। विदेशी-मानस की संवेदन शून्यता उन्हें पग-पग पर आहत करती है।

कैसे कोरे खाली नुक्कड़
यह विदेश है
चाय की
दुकान नहीं है
सिगरेट, बीड़ी, पान नहीं है
पैदल चलने वालों का भी
कोई नाम निशान
नहीं है
ना ही भीड़
नहीं आवाजें
सन्नाटा बिखरा भदेस है।

'मेरी माटी मेरा देश' में उन्होंने स्वीकार किया है कि भारत देश के गीत उनके अंतर्मन में ऋचा की तरह बजते रहते हैं। मातृभाषा हिंदी को परंपरा की धरोहर मानते हुए वे शिक्षा और धनार्जन में उसके उपयोगी स्वरूप की आकांक्षा करती हैं तथा कामना करती हैं-

आसमान तक उड़कर जाए
हिंदी अपना ध्वज फैलाए
शांति छाँह में
मिल कर बैठे
दुखिया यह संसार
विश्व प्रेम की पंखुरियों का
गूँथें अनुपम हार।

प्रजातंत्र की विसंगतियाँ, दया-धर्म की नीलामी, नफरत का ऐलान, बारूदों के ढेर, अपनी-अपनी डफली बजाना, प्रपंचों का बिछा हुआ जाल, उनकी संवेदना को आहत करता है। सरकारी वादों और दलों का झूठा निकल जाना, राजनीति की विद्रूपताएँ उनकी लेखनी की धार को और तीव्र करती हैं और वे कह उठती हैं-

तिकड़म राजनीति की चलती
सड़कों पर बंदूक टहलतीं।

आतंकवाद, बिकी हुई न्याय व्यवस्था, जीवन की आपा-धापी के सटीक चित्रों के साथ-साथ पूर्णिमाजी के गीतों में भरी धूप में छाँव सरीखे पिता के आशीष हैं। तर्जनी उठा गंतव्य तक पहुँचाते पिता के साथ पर का संबल बनी माँ है जिनके सुवासित वात्सल्य से महक उठता है मन। इन गीतों में ऐसी जिंदगी धड़कती है जो कभी पन्ना, कभी खुशबू, कभी बादल बनकर उड़ती चली जाती है। यहाँ एक ऐसा घर है जिसके द्वार नीले रंग से पुते हैं, जिस घर के पीतल के लैंप न जाने कितनी रातों में जगे हैं, जिसकी दीवारों पर हरियल पत्तों की बेल चढ़ी है। यह घर पूर्णिमाजी को रह-रह कर पुकारता है।

कुल मिलाकर संग्रह के गीतों की संरचना में अद्‌भुत संतुलन है। भाषा, भाव और चिंतन की त्रिवेणी के अद्‌भुत प्रवाह में पाठक बहता ही चला जाता है और बहते-बहते गीतों के अनेक अंश उसके मन पर अमिट होकर रह जाते हैं और वह रह-रहकर गुनगुना उठने के लिए विवश हो जाता है।

बचपन

● डॉ० निरूपमा राय

बचपन में अपना ननिहाल हमें बहुत भाता था। गर्मी की छुट्टियाँ यहीं बीतती थीं। हमें लगता, हम कहीं के राजा-रानी हैं ... माँ पापा की डाँट-फटकार नहीं ... रोक-टोक नहीं .... केवल प्यार-दुलार, मनुहार-धमाचौकड़ी .... खेल-कूद और तरह-तरह के सुस्वादु भोजन का अभूतपूर्व स्वाद। नाना-नानी, मौसी, बड़े मामा और बड़ी मामी सब कितना दुलार अपनापन और ममत्व लुटाते ...। हम अभिभूत हो उठते थे। पर धीरे-धीरे हमारे परिवार और ननिहाल के रिश्तों में खटास आने लगी।

"दादी! बाबू मामा नहीं रहे।" छोटा भाई ने फोन पर बताया तो मैं एक क्षण के लिए जड़वत् सी हो गयी। फिर पूछा, "कैसे?"

"ब्रेन हेमरेज से।"

"तू जाएगा?"

"दीदी! जाना तो चाहता हूँ पर .....।"

"मैं समझती हूँ....." मैंने कहा और फोन रख दिया। छोटे भाई के शब्दों में बहुत से अनावृत्त रहस्य छिपे थे। एक शब्द 'पर!' के पीछे गहरा दर्द था। पर ... किन्तु ..... लेकिन..... जाने भी दो ..... छोड़ो भी ..... जैसे शब्द ही ननिहाल जाने के नाम पर हम भाई-बहनों के दिमाग में आते थे। आज वो हमारे लिए एक ऐसी देहरी थी जहाँ पाँव रखने से पहले, उसकी चौखट लाँघने से पूर्व कई सवाल अन्तर्मन में शोर मचाने लगते थे। दु:ख की बात तो ये है कि कभी यही देहरी हमारे लिए आनंद का सर्वोच्च शिखर हुआ करती थी। पर तब .... जब बचपन था।

न जाने बचपन निरन्तर समय की परिधि लाँघकर बड़ा क्यों होता जाता है .... काश! कोई जादू की डिब्बी होती जिसमें हम अपना बचपन सहेज लेते। पर नहीं, ये तो कपूर की टिकिया-सी होती है ... न जाने कब हवा में घुल जाती है। जब होश आता है तो यौवना की दहलीज पर खड़ा मन पीछे नहीं देखता, निरन्तर आगे की ओर उड़ान भरने पर आतुर होता है। और जब कभी कोई ऐसी घटना घट जाती है जो मन के रेशमी तन्तुओं को सेफ्टीपिन की नोक से जैसे उधेड़ने-सी लगती है .... तब बचपन बहुत याद आता है। मुझे भी आज अपना बचपन याद आ रहा है। मन उस कालखंड में जाने को बेताब है ... जब बचपन था।

बाबू मामा की मृत्यु ने मानों मेरे अन्तर्मन में सोई उस नन्हीं बच्ची को सहसा फिर से जगा दिया था जो वर्षों पहले दुनिया की भीड़ में 'बड़ी' होकर खो चुकी थी। खबर सुनकर मन में एक गुबार-सा चलने लगा था। गले में जैसे कुछ फँस या अटक सा गया था ... जैसे छाती पर भारी पत्थर रख दिया गया हो ....!

बचपन में अपना ननिहाल हमें बहुत भाता था। गर्मी की छुट्टियाँ यहीं बीतती थीं। हमें लगता, हम कहीं के राजा-रानी हैं ... माँ पापा की डाँट-फटकार नहीं ... रोक-टोक नहीं .... केवल प्यार-दुलार, मनुहार-धमाचौकड़ी .... खेल-कूद और तरह-तरह के सुस्वादु भोजन का अभूतपूर्व स्वाद। नाना-नानी, मौसी बड़े मामा और बड़ी मामी सब कितना दुलार अपनापन और ममत्व लुटाते ...। हम अभिभूत हो उठते थे। पर धीरे-धीरे हमारे परिवार और ननिहाल के रिश्तों में खटास आने लगी। कारण बहुत से थे, गलतियाँ दोनों ओर से हुई .... किसी ने किसी को मनाने की कोशिश नहीं की ... अहं आड़े आता रहा। कई ऐसी बातें भी हुईं जो एटम बम की तरह विध्वंसक थीं ... जिन्हें खोलना विस्फोट को दावत देना था। यही जीवनचक्र है। मानव कोई देवता तो नहीं है न ... कि सारे बन्धनों, भावनाओं और संवेदनाओं से निर्लिप्त रहे। वैसे ये तो तब की बात है जब हम बच्चों ने होश संभाल लिया था। हम बड़े हो गये थे, दुनियादारी समझने वाले ....।

बाबू मामा की मृत्यु से स्तब्ध मन स्मृति के बंद किवाड़ों की सांकल खटखटाने लगा था। जहाँ मेरा बालपन था .... माँ थीं ... पापा थे ... दादी, बुआ और सबसे बढ़कर थे बाबू मामा। माँ के तीन भाई-बहनों में सबसे छोटे थे बसंत मामा ..... जिन्हें स्नेहवश सब बाबू पुकारा करते थे। बड़े मामा मितभाषी और अनुशासन पसन्द थे, पर बाबू मामा ढेर सारी बातें करते। हम बच्चों के लिए उनके पास जहाँ एक ओर गढ़ी-अनगढ़ी कल्पनात्मक कथाओं का भंडार था वहीं दूसरी ओर वो हमारे बचपन के खेलों के भी साथी थे। और हाँ! माँ-पापा की नजर बचाकर हमारे लिए इमली की खट्टी चटनी ... चूरन ... जलेबी ... मीठी सुपारी और टॉफिया ला-लाकर जेब में भरनेवाले भी एकमात्र वही थे। पापा सरकारी सेवा में थे। जहाँ कहीं भी जाते, कोई आये या ना आये बाबू मामा जरूर आते थे। माँ असीम स्नेह से भर उठती। उनसे जुड़ी मेरे बचपन की गाथाओं की पोटली से धीरे-धीरे कथाएँ झरती रहतीं और मैं मंत्रमुग्ध होकर सुनती रहती ...।

"जानती है नयना! विवाह के चौदह वर्ष बाद जब तू मेरी गोद में आयी तो जितना मैंने तेरे लिए किया है न ... उससे कम बाबू ने नहीं किया। जब तू इतनी-सी थी तब ये प्रसन्नचित होकर तेरे तोतड़े तक बदल डालता था ... नहला-घुलाकर झालरवाली फ्रॉक पहनाकर गुड़िया-सी बनाकर बाँहों में लिए डोलता रहता ... कई-कई रात तुझे कंधे पर सुलाकर टहलता रहता ... मैं सुनती जाती .. कई कहानियाँ। बचपन की मीठी यादें तो आजीवन धड़कन बनकर हृदयमंजूषा में सहेजी रहती हैं। जब कभी उसे मंजूषा का ढक्कन खुलता है तो लगता है, काश कोई हमारा बचपन मुट्ठी में वापस सहेज दे!

विगत के पन्द्रह वर्षों में हम लगभग ननिहाल से कट गये थे। जब तक बड़े मामा रहे किसी तरह संबंध जुड़ा रहा फिर .... संबंध मिट्टी की भीत-सा ढहने लगा। और माँ की असमय मृत्यु के बाद धूल-धूसरित हो गया। जब रिश्तों में अपेक्षाएँ बढ़ने लगती हैं तब दरार बहुत चौड़ी होती चली जाती है। संबंध का अर्थ संवेदना ... जुड़ाव .. नहीं रह जाता, बदलकर कुछ और ही स्वरूप ले लेता है जहाँ जड़ों में आदर-स्नेह या अनुराग नहीं केवल द्वेष, क्रोध और अहं होता है। ननिहाल से दूर होने के कई कारण भले ही थे उसे याद करके केवल मन दु:ख ही सकता है आनन्द कैसे मिलेगा? मैं भी क्या बातें ले बैठती हूँ .... ये तो वर्तमान हैं ... मैं तो उस कालखण्ड में थी न जब बचपन था।

होली की वो छुट्टियाँ कभी विस्मृत नहीं कर पाऊँगी जब हम सब भाई बहन इकट्ठे होते थे। बड़ी मामी के हाथों की गुझिया और माँ के हाथों के पूए की मिठास जीभ पर ठहरती कहाँ थी, वो तो सीधे आत्मा में उतर रच-बस जाती थी। आज भी स्मरण से मन मिसरी की डली-सा हो जाता है। एक शाम सारे बच्चे बड़े हॉल में बैठे खेल रहे थे कि अचानक बाहर की खिड़की पर दस्तक सुनाई दी ... हम सतर्क हो उठे, कौन है? कुछ देर बाद लगभग सभी खिड़कियों पर दस्तक होने लगी। हम भागकर माँ के पास पहुँचे..... माँ! कोई खिड़की खटका रहा है। "अरे! कौन होगा? हवा से खड़की होगी ... जाओ खोलो ... माथ मत खाओ।" माँ ने कहा तो वहीं खड़े बाबू मामा बोले, "अरे नहीं रे बच्चो! दीदी को क्या पता, जानते हो खिड़की कौन खड़का रहा था?"

"कौन?" हमारा समवेत स्वर

"भूत!"

भू .... त....!! हम सब मामा के आस-पास सिमट गये थे और वो पूरी तन्मयता से भूत के किस्से सुनाने में मग्न थे। हमारी घिग्गी बंध गयी थी। उन्होंने समझाया .... "मैं हूँ न भूत को ऐसी फाइट मारूँगा कि चार खाने चित होकर गिरेगा ....।" हम बच्चे आश्वस्त होकर खेलने लगे .... कुछ देर बाद अचानक बायीं तरफ की बड़ी खिड़की धचके के साथ खुल गयी और काले कपड़ों में लिपटा एक हाथ अन्दर की ओर आ गया ... और वो भयानक आवाज ..... हू उ ... ऊ! मम्मी ...! मम्मी ...! पुकारते हम सब भय से काँपते बाहर भागे। घर मे, हड़कंप मच गया ... क्या हुआ? खिड़की .. भूत .. हाथ ... हम ठीक से बोल भी नहीं पा रहे थे। बड़े मामा का डर भी नहीं रहा था ... धीमी आवाज में बोलने का होश ही कहाँ था ... भूत उस पर भी भारी पड़ गया था। कौन है? बड़े मामा गुस्से से चिल्लाए तो खिड़की के पास से सर झुकाए बाबू मामा धीरे से आगे आ गये।

"तू था ...?" माँ जोर से हँस पड़ी थी। उनकी पूरी लानत-सलामत हुई पर कुछ ही देर बाद हम सब फिर उन्हें घेरकर बैठे थे, और वो फिर एक नयी कहानी सुना रहे थे .... वही 'भूत' वाली।

आज सोचती हूँ वो कौन-सा भूत था जो हमारे मीठे रिश्तों को निगल गया .... न जाने जीवन के किस मनहूस क्षण में, समय की किस खिड़की से उसका हाथ आया और सब कुछ छिन्न-भिन्न हो गया।

माँ को अपने भाई-बहनों से बहुत स्नेह था। जब तक स्वथ्य रही ममता का अजस्र स्रोत लुटाती रहीं और जब बिस्तर पकड़ा तो मन वेदनाओं से छलनी था। रोती रहतीं, कहती रहतीं .... अपने बच्चों की तरह अपने भाइयों से प्यार करती हूँ और वो ... बीमार बहन का हाल तक पूछने नहीं ... आस-पास घर इसलिए बनवाया था कि सुख-दु:ख में सब साथ रहेंगे ... क्या सोचा था क्या हो गया?

ये रिश्तों की कड़ी टूटने का अन्तिम दौर था ... आपसी गलत-फहमियाँ इतनी बढ़ गयी थीं कि रिश्ते के मर्म को दीमक की तरह खोखला कर रही थीं। माँ प्राय: पीड़ा का असहनीय भार लिए विगत में डूबती-उतरती रहतीं ... "बाबू इतना बड़ा कृतघ्न निकलेगा सपने में भी नहीं सोचा था। आज जिस नौकरी पर इतराता इतने ठाठ से रहता है न ... उसका कारण भी हम हैं ... तेरे पिता ने ही कितना कह-सुनकर इसे अपने ऑफिस में रखवाया था ... वरना इंटर फेल को कौन नौकरी देता? इसकी भी आँख का पानी सूख गया? एक बार आकर पूछ भी नहीं सकता कि दीदी कैसी हो? कौन-सा पहाड़ लांघकर आना है.....।" ''बड़ी बहन हूँ क्या गलती पर समझाने का हक भी नहीं है?" "छोड़ो न माँ ... अपनी-अपनी बुद्धि ... अपनी सोच!'' हाँ जब रिश्तों में एकांगी सोच का दायरा बढ़ने लगता है न तब संबंधों की मिठास सिमटने लगती है और मौन के बिन्दु पर सब कुछ ठिठक-सा जाता है। छोटे-छोटे देन-लेन, इधर-उधर की बातें और रिश्तों में गहरी अपेक्षाओं से संबंध दरकने लगते हैं। यही हमारे परिवारों के साथ भी हुआ था। मन तर्क ... वितर्क और कुतर्क में उलझने लगा था। हे ईश्वर! क्या करूँ इस मानवीय दुर्बलता का .... गड़े मुर्दे उखाड़ना इसकी आदत है। कहाँ भटक गयी मैं? मैं तो उस काल में थी न, जहाँ बचपन था!

पापा उच्च सरकारी पदाधिकारी थे। जहाँ कहीं भी उनकी पोस्टिंग होती बाबू मामा जरूर आते थे। माँ कितना खुश होती थीं उन्हें देखकर ... उनके आनंद का अर्थ आज समझती हूँ जब कभी मेरा भाई क्षण के लिए भी मेरे घर आता है। माँ गाजर का हलुवा बनाती ... बेसन के गट्टे की सब्जी बनातीं ... आलू के पकौड़े ... मटर पनीर .. और हाँ सूजी बेसन के चीले ... सब कुछ मामा का पसन्द का बनता। माँ का उल्लास देखते ही बनता था। वो कहती, "जब बहन पराये देश में होती है न, घर से दूर ... तब भाई का आगमन ही उसे अहसास दिलाता है कि वो आज भी मायके से जुड़ी है, वहाँ के लिए विशिष्ट है।"

और वही माँ जब बीमार थीं तो उनसे मिलने सात समन्दर पार आने वाला भाई पाँच-छह घर की दूरी से नहीं आ सका। आखिर क्यों रिश्ते इतने बेमानी हो जाते हैं?

आक्षेप ... डाँट ... समझाना-बुझाना ... प्यार से सही बात पूछना या बताना ... गलती बताकर सही राह दिखने का प्रयास करना क्या गलत है? बहुत सी ऐसी बातें होती हैं जिसे व्यक्ति आजीवन भूल ही नहीं पाता। बाबू मामा से जुड़ी कई बातों ने हमारा संबंध दरकाया था। उस पर कई बार संदेह की सूइयाँ उठीं- कई बार वो संदेह के घेरे में आए। आज भी पापा के कहे शब्द याद हैं ... "अरे! बाबू लाख कह ले, मैं जानता हूँ बैंक में रुपये जमा करवाने जाते वक्त उसकी जेब नहीं कटी। उसने मेरे पैसे रख लिये हैं ... सरासर झूठ बोल रहा है।"

माँ चुप थीं ... पर बाद में उन्होंने बताया कि उन्हें भी कई बार बाबू मामा पर शक हुआ था पर वो स्नेहवश चुप रह गयी थीं। माँ ने जब बड़े मामा से इस बात की चर्चा की तो उन्होंने बाबू मामा को खूब डाँटा ... माँ ने भी समझाया पर उनके मन में जिस गाँठ का सृजन हुआ वो आजीवन बंधी रही। पापा के प्रयास से किसी तरह मामा को सिंचाई विभाग में छोटी-सी नौकरी मिल गयी ... विवाह हुआ ... और रहे-सहे संबंध को तेज मिजाज मामी ने अपने स्वभाव की आरी से काट डाला। समय बीतता रहा .... पहले माँ गयीं, फिर पापा .... और अब बाबू मामा भी ...। गले में फिर कुछ अटक-सा गया है... छाती पर भारी भार जैसा लग रहा है ... नहीं, मुझे रोना नहीं आ रहा .... क्यों रोऊँगी मैं? वर्षों पहले जो रिश्ता लगभग टूट ही गया हो उसके रहने या नहीं रहने से क्या? पर एक और घटना बहुत याद आ रही है .... तभी का ... जब बचपन था ...। बाबू मामा हमेशा मुझे चिढ़ाया करते, "सोने जा रही हो? देखो, झूला मत झूलने लगना।" मैं भी हँस पड़ती। इसके पीछे की घटना भी कम रोचक नहीं है। मैं करीब आठ महीने की रही होऊँगी जब एक रात मुझे बिस्तर पर सुलाकर माँ पापा और मामा खाना खा रहे थे। अचानक मेरे रोने की आवाज सुनकर माँ कमरे में आयी तो देखा अब रोने की आवाज भी नहीं आ रही और बड़े से बिस्तर पर मैं कहीं नहीं हूँ। माँ की चीख सुनकर सब भागे-भागे आए। "पता नहीं कहाँ गयी मेरी बेटी .... हे भगवान! यहाँ तो लकड़बग्घे भी हैं ... कहीं उठाकर तो नहीं ले गये ...!" माँ रोती जा रही थी। ये घटना नेपाल के पास सटे एक कस्बे की थी जहाँ जंगल थे और सरकारी कालोनियों में कभी-कभार लकड़बग्घे आकर बकरी, गाय और मुर्गियाँ उठा ले जाते थे। तब बाबू मामा ने ही मुझे दीवार के तरफ की ढीली मच्छरदानी में झूलते पाया था। हुआ यों था कि मैं लुढ़क कर बड़ी सी मसहरी के एक कोने में समा गयी और झूलते-झूलते तुरंत सो गयी थी। आज भी मच्छरदानी मोड़ते वक्त वो घटना याद आ जाती है ... आठ महीने की बच्ची क्या रखेगी ... मामा ने कभी भूलने ही नहीं दिया था।

रात गहराने लगी है। मायके से तीन सौ किलोमीटर दूर ... पटना में अपने बिस्तर पर लेटी मेरी आँखों में नींद का लेश मात्र नहीं है। कानों में बाबू मामा के कहे शब्द

बार-बार गूंज रहे हैं ... "सोने जा रही हो ... झूला मत झूलने लगना।" मैं लाख प्रयत्न के बावजूद यादों के झूले से स्वयं को उतार नहीं पा रही हूँ ... प्रत्येक पेंग पर स्नेह लुटाते ... मीठी टॉफियाँ और चूरन खिलाते ... भूत की कहानियाँ सुनाते ... खूब हँसाते ... बाबू मामा दिख रहे हैं ... फिर ... फिर रिश्तों की किर्चे भी दिख रही हैं ... आत्मा लहू-लुहान होने लगी है ....। मैं भी कितनी पागल हूँ। क्यों सोच रही हूँ उस विस्मृत अतीत के बारे में ... सब कुछ कब का खत्म हो गया ... दुनियाँ में लोग रोज मरते हैं ... आज वो भी गये ... मृत्यु तो शाश्वत सत्य है ... पर मेरी आँखें भीगने क्यों लगी हैं ... हे ईश्वर! मैं फूट-फूट कर क्यों रो पड़ी हूँ ...? पन्द्रह साल हो गये रिश्ता टूटे हुए ... फिर ... आँसू थमते क्यों नहीं? आँसू अनवरत बह रहे हैं। पर एक संतोष है मन में .... जो मुझे जीवन भर अपार शान्ति देगा ...। कुछ अपनी अनुभूतियाँ और अपने सत्य होते हैं, जो आत्मा में संचित रहते हैं, जो कोई किसी से नहीं बाँटता। पिछले वर्ष मेरे जीवन में एक ऐसी घटना घटीं जो आज मुझे आत्मिक संतोष से भर रही है। एक गूढ़ रहस्य पर से परदा उठा रही है कि अपने प्रिय संबंधों को कई मौके देकर हार जाने पर भी, दु:ख होने पर भी एक अन्तिम मौका जरूर देना चाहिए अपनी ओर से ... और बाबू मामा से बात करने का मौका मैंने खुद को स्वयं दिया ... स्लिप-डिस्क के कारण तबियत बार-बार खराब रहने के कारण विश्वास न होने पर भी अपनी कुंडली बनवाने की इच्छा हुई तो जन्म का समय और दिन पता नहीं था। माँ नहीं रही, पापा भी नहीं हैं .....बड़े मामा-मामी भी गुजर गये ... कौन बताएगा मैं किस वक्त पैदा हुई? फिर मन मस्तिष्क में कौंधे बाबू मामा! वही बाबू मामा जो सामने पड़ने पर रास्ता ही बदल लेते थे। पर उस शाम मैंने सामने पड़ने पर उन्हें रास्ता बदलने ही नहीं दिया। हठात् सामने आकर खड़ी हो गयी ... जब तक वो कुछ सोच पाते मैंने उनके चरण-स्पर्श करके कहा ... माँ-पापा अब नहीं रहे मामा ..... पर आप हैं न मेरे बुजुर्ग ... पहले तो आशीर्वाद दीजिये ... आपकी बेटी पटना विश्वविद्यालय में पढ़ाने लगी है ...।" बाबू मामा का चेहरा एक अनजानी पीड़ा से जहाँ दरक उठा था, वहीं एक अद्‌भुत आह्लाद उनकी आँखों में कौंधा मानों विगत को वर्तमान बन गया था ... "ढेरों आशीष लो नयना मेरी ओर से ... सुखी रहो, खूब तरक्की करो ... पढ़ता रहता हूँ तुम्हारी कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में बहुत खुशी होती है ...।"

वे कहते जा रहे थे और भाव विह्वल मैं उनके मन में अपने प्रति अब तक संचित प्रेम से अभिभूत थी ... फिर ऐसा क्या था जो हमें रोकता रहा था? और जब मैंने उनसे अपनी जन्मतिथि और समय पूछा तो मानो उनके मन में संचित कोमल और प्रेम पगी भावनाएँ मुखर हो उठीं .... "कैसे भूल सकता हूँ वो दिन ... चौदह वर्षों के बाद दीदी-जीजाजी ने तुम्हें पाया था ... सुबह के चार बजकर पचपन मिनट पर ... और दिन था ... बृहस्पतिवार ... हाँ! जीजाजी की आँसू से छलकती आँखे मैं कभी भूल नहीं पाता

हूँ और वह कथन ... ''बाबू! हमें अनमोल निधि मिली है ...।" उनकी आँखे आर्द्र हो उठी थीं। मुझे ढेरों आशीष देते वो आगे बढ़ गये थे और उसी शाम मैं पटना आ गयी थी। और लगभग दस दिन बाद ही बाबू मामा चल बसे थे।

आज सोचती हूँ यदि उस दिन उन्हें रोककर बातें नहीं की होती तो आज मन पर एक पहाड़-सा बोझ लिए बैठी होती ... आज मन निर्द्वन्द्व है ... पर आँखें न चाहते हुए भी झरने का पर्याय बनती जा रही हैं ... क्यों रो रही हूँ मैं .....? उनकी मृत्यु रूला रही है या दस-पन्द्रह मिनट की की वो मुलाकात जिसमें फिर से एकबार बचपन को जी लिया था?

◈◈◈

उर्सलाइन कान्वेंट रोड, रंगभूमि हाता, पूर्णिया-854301 (बिहार)। मो० 9430927418, 8409102179
Email: nirupamroy25@gmail.com

नवांकुर कविता

उड़ान

– यशवर्धन शिवपुत्र

बादलों के बीच उड़ता एक पक्षी
उड़ता ही जाता है अपने पंखों को फैलाए
आह्लाद से भरा मुस्कुराता है
देखता है पीछे छूटते नजारे
नाप डालना चाहता है
पूरी सृष्टि को एक बार में
सोचता है एक दिन बादलों से भी ऊँचा उड़ूँगा
इतना ऊँचा कि पूरी सृष्टि
मेरे पंखों में समा जाएगी
लेकिन तभी अपने पंखों को समेट कर
आशंकाओं के घोंसले में
छुप जाती है उड़ान
डरता है पक्षी
कि सूरज ढ़लने से पहले ही
कहीं रात न हो जाए।

◈◈◈

निर्मला हाउस, नई पुनाईचक, पटना-23

प्रथमा

● अरविन्द कुमार मुकुल

सामान्य अभिवादन के बाद मैं घर से निकल गया क्योंकि इन बिन बुलाए मेहमानों के साथ रहना मुझे अच्छा नहीं लग रहा था। देर रात जब घर आया तो पिता ने अपना आदेश सुनाया- कल सुबह 6 बजे से अर्चना की परीक्षा है। तुम इसे परीक्षा दिलाने ले जाना और परीक्षा दिलाकर वापस घर भी लाना। दूसरे शहर की लड़की है, इस कारण पटना में उसका कुछ देखा-सुना नहीं है।

उसका नाम प्रथमा था। यह उसका असल नाम नहीं था। असल नाम तो अर्चना, नूतन, अनिता, रीता, प्रीति या रीमा कुछ भी हो सकता है। वैसे उषा, कल्पना या श्यामली भी कौन से बुरे नाम हैं। प्रथमा तो वह नाम है जिस नाम से मैं उसे बुलाया करता था। हालाँकि घर के लोग उसे बेबी कहकर बुलाते थे।

नाम लेकर बुलाने का मौका कम ही मिल पाता था, मैं जैसे गेट खोल उसके घर के हाते में पहुँचता था वह चली आती थी- ''आइए।'' वह बहुत हौले, मगर उत्साहपूर्वक कहती थी और मैं उसके साथ-साथ अक्सर उसके कमरे में चला जाता था।

हम घंटों बातें करते, कई-कई बार तो बात करते-करते रात के बारह तक बज जाते और उसके घर के लोग बोलने लगते-''बेबी, अब सोने चलो और मैं गप्प के इस विराम से दुखी हो जाता और वह भी मेरे साथ-साथ हाते तक आती। फिर हम गेट तक पहुँचते-पहुँचते देर तक बातें करते रहते। ऐसा लगता, बातें खत्म होने को ही नहीं हैं। अक्सर एक-दूसरे को 'गुड नाइट' कहते हम लाचार मन से विदा लेते।

ऐसे क्षणों में लगता, काश! उसके घर के ऊपर वाली मंजिल पर ही मेरा घर होता और उसके कमरे और मेरे कमरे के बीच सीढ़ियाँ लगी होतीं।
ऊपर-नीचे के कमरों और उनके बीच सीढ़ियों की कल्पना मुझे असीम सुख देती। मैं अक्सर ही उसे इस कल्पना के विषय में बताता और वह हौले से मुस्करा भर देती।

उसकी मुस्कराहट मुझे बेहद अच्छी लगती।

और मैं कभी-कभी बहुत डरते-डरते कह उठता- काश! हमारी तुम्हारी शादी हो जाती तो कितना अच्छा रहता।

''आप पागल हो गए हैं क्या?'' उसका संक्षिप्त-सा जवाब रहता।

कई बार मैं कहता- ''कितना अच्छा हो हम घूमने के नाम पर अमेरिका जाएँ और वहाँ शादी कर लें।''

उसकी और मेरी मुलाकात तब हुई थी जब मैं पहली-पहली बार पटना आया था। जिस मेजबान के घर ठहरा था वहीं मेरे पिता को पूरा घर दिखाने के क्रम में रसोईघर दिखा रहा था और मैं अपने पिता के साथ था।

रसोईघर की देहरी पर एक साँवली-सी लड़की बैठी थी- और मेरे पिता को बताया गया कि यही बेबी है। तब मैंने उसे आँखों के कोर से देखा था।

उसने कुछ भी नहीं कहा था- मैं भी चुप था। यह दूसरी बात थी कि उस समय मैं तीसरी कक्षा का विद्यार्थी था और वह पहली की।

उसके चाचा की शादी में मैं पटना आया था। यह हमारी पहली मुलाकात थी।

समय के साथ वह बी.एस.सी. की छात्र हो गई और मैं एम.ए. का। इसी समय उसके पापा के एक मित्र का लड़का डॉक्टरी पढ़ने पटना आया। वह हॉस्टल में रहता था और प्रथमा के पिता ही उसके स्थानीय अभिभावक थे। इस कारण अक्सर ही वह प्रथमा के घर आने लगा था।

हमारी मित्रता में कोई अन्तर नहीं आया था। हम घंटों गप्प करते। ढेर सारी बातें होतीं। देखने वाले अक्सर पूछते, ''तुम दोनों के पास गप्प का इतना बड़ा स्टाक है कि खत्म ही नहीं होता।'' प्रथमा अपने कॉलेज की हर दिन की हर घटना मुझे सुनाती और वह भी पूरे विस्तार से।

एक दिन दोपहर मैं उसके घर गया। वह खाना खा रही थी। मगर उसने एक बड़े से तौलिए से अपना मुँह छिपा रखा था। मैंने पूछा, ''अरे मुँह छिपा कर क्यों खा रही हो? वह मुस्कराई थी और उसने अपने मुँह को कुछ ज्यादा ही छिपा लिया था। वह मेडिको लड़का भी पास ही बैठा था। उसने तौलिया खींच लिया। मैंने देखा प्रथमा के ओंठ सूजे थे।

''अरे, यह क्या हुआ?'' ''हड्डा काट लिया है।'' उसका जबाव था।

मैं अफसोस करने लगा।

इसी बीच एक घटना घटी। प्रथमा की बड़ी बहन की शादी थी। बारात लगी थी। लोग आ-जा रहे थे। ऐसे में एक ऐसा परिवार भी आया जो मेरे पिता जी से ज्यादा ही जुड़ा था। स्वागत करने हेतु मेरे पिता उठे और भंडार की तरफ बढ़े। ''चार प्लेट नाश्ता लाओ, श्रीवास्तव जी आए हैं।''

''नाश्ता नहीं है।'' प्रथमा के मामा का जवाब था।

मेरे पिता मर्माहत होकर भंडार से वापस आ रहे थे। मेरे परिवार के सारे लोग इस घटना से विचलित होकर वापस जा चुके थे।

प्रथमा के परिवार और मेरे परिवार में बातचीत बंद हो गई थी। एक अजब तनाव का माहौल था।

दोनों पक्ष एक-दूसरे की कटु आलोचना में व्यस्त थे। इतिहास की सारी घटनाएँ जुटाई जा रही थीं और एक नया महाभारत छिड़ चुका था।

मेरे घर में मेरी शिकायत हो रही थी क्योंकि तब भी प्रत्येक दिन मैं प्रथमा के घर जाता था और प्रथमा के घर में प्रथमा की शिकायत हो रही थी, क्योंकि वह भी नहीं बदली थी।

यह भी एक नया अनुभव था। मेरा प्रथमा के घर जाना। वहाँ किसी का भी मुझसे न बोलना और मेरा चुपचाप उसके बेडरूम तक पहुँचना।

भारत-पाक युद्ध जैसी यह तनातनी लगभग सालभर चली।

इसी बीच मेरी एक कहानी आकाशवाणी पर आई जो बहुत ही लोकप्रिय हुई और आकाशवाणी को ढेर सारे पत्र मिले।

उनमें एक पत्र अशोका का भी था। आरा की इस श्रोता ने कहानी की भूरी-भूरी प्रशंसा की और पूछा था कि यह कहानी आपने लिखी क्यों? क्या यह आपका भोगा हुआ यथार्थ है?

मैंने पत्र का जवाब दिया और दूसरी कहानी लिखने की सोच ही रहा था कि एक नई कहानी हो गई।

सुबह-सुबह ही घर में एक परिवार आया। 15-16 की एक लड़की, उसकी दादी और उसके एक रिश्ते के चाचा। पता चला मेडिकल टेस्ट देने यह लड़की पटना आई है और उसके पिता और मेरे पिता रिश्ते में थे। मित्रता के इसी तकाजे के अनुभव पर वह लड़की जिसका नाम अर्चना था, अपनी दादी और चाचा के साथ मेरे घर ठहर कर परीक्षा देने हेतु पधारी थी।

सामान्य अभिवादन के बाद मैं घर से निकल गया क्योंकि इन बिन बुलाए मेहमानों के साथ रहना मुझे अच्छा नहीं लग रहा था। देर रात जब घर आया तो पिता ने अपना आदेश सुनाया- ''कल सुबह 6 बजे से अर्चना की परीक्षा है। तुम इसे परीक्षा दिलाने ले जाना और परीक्षा दिलाकर वापस घर भी लाना। दूसरे शहर की लड़की है, इस कारण पटना में उसका कुछ देखा-सुना नहीं है।''

गांधी मैदान के पास मगध महिला महाविद्यालय में उसे परीक्षा देनी थी। बहुत गुस्सा आया- ''कहाँ फँस गया? किसी को परीक्षा देनी है तो मैं क्यूँ मरूँ।'' मगर लाचार था। तब के बेटे अपने परिवारों को न नहीं बोला करते थे।

दूसरे दिन साथ-साथ रिक्शा पर उसे परीक्षा दिलाने ले गया। रास्ते भर मैं चुप था और वह अपनी किताब में खोई थी। लौटते वक्त जोरदार वर्षा शुरू हो गई और हम दोनों रिक्शे पर बैठने के बावजूद बुरी तरह भींग गए। इस स्थिति में रिक्शे का आगे बढ़ना संभव नहीं था और लाचार हो हम एक रेस्तराँ में रुक गए।

बिना किसी विशेष संकोच के अर्चना ने मसाल डोसा का आर्डर दे दिया। उसके बाद वर्षा थमने पर हम भींगे कपड़ों में ही घर आए। पता चला, घर में लोग काफी चिन्तित थे- आखिर देरी क्यों हुई। खैर, अर्चना परीक्षा देकर वापस अपने शहर लौट गई। मगर वहाँ से पत्र लिखना न भूली।

''आप एक सूरज हैं।'' अर्चना के पत्र में लिखा था। यह पत्र लेकर मैंने प्रथमा को पढ़ाया और प्रथमा ने पत्र पढ़कर मुस्करा कर कहा-''सूरज केवल जाड़े में सुखकर लगता है आप कहीं ग्रीष्म के सूर्य तो नहीं।''

फिर अभी इस पत्र का जवाब दूँ या न दूँ, यह सोच ही रहा था कि अर्चना का दूसरा पत्र आया।

''जन्म लेता बच्चा जिस तरह रोने को बेचैन होता है उसी तरह कोई आज लिखने को बेचैन हो उठा है। कभी-कभी पत्थर भी रोते हैं और समुद्र भी प्यासा रह जाता है।''

यह पत्र भी मैंने प्रथमा को दिखाया। उसने पत्र को पढ़ा, कई बार पढ़ा। फिर उसने कहा- ''इसका जवाब आप जरूर दें।'' मैं पशोपेश में था। एक प्रेम का मन रखने को एक अप्रिय को प्रेम का सम्बल मिल रहा था।

''तुम सरस, सरल, सजल हो। तुम्हें कल्पनाओं से सजाना मेरा काम नहीं। हाँ, तुमने मुझे सूर्य कहा है, कहो तो मैं तुम्हें जलाकर भस्म कर दूँ'' मैंने लिखा था।

इसी बीच प्रथमा ने बैंक प्रतियोगिता परीक्षा का फार्म भरा था। उसके पिता ने मुझे बुलाकर कहा-''जरा बेबी को मैथ पढ़ा दीजिए।'' आपको पढ़ाने में दिक्कत नहीं हो

इसलिए ऊपर का कमरा खाली कर दिया है।'' 'नहीं' वह लगभग चीखी थी, पढ़ने के लिए नीचे का यह ड्राइंगरूम ही ठीक रहेगा।

यह तुमने क्या कर दिया प्रथमा। मैंने अपने मन में कहा था।

मैं पटना आ रही हूँ, मेरा रिजल्ट निकल गया है और पटना मेडिकल कॉलेज में मेरा दाखिला होना है। अर्चना का पत्र आया।

मैंने पढ़ाते-पढ़ाते तुम्हें यह पत्र भी पढ़ाया था। चलिए, अच्छा हुआ सूरज को चाँद का साथ मिलेगा। प्रथमा मुस्करा कर बोली थी और मैंने उदास होकर सोचा था- ''काश! सूरज को चाँद का नहीं, प्रथमा का प्यार मिलता।

और मैंने पूछा था- ''सच बताओ प्रथमा, तुम मुझे प्यार नहीं करती।'' 'नहीं' प्रथमा ने कचकचा कर मेरे सपनों का महल तोड़ दिया था। ''आप मेरे मित्र हैं केवल मित्र।''

और तभी मुझे लगा था कि मुहल्ले में उठे इस अफवाह में शायद काफी बल है कि प्रथमा मेडिकल में पढ़ने वाले एक लड़के से प्यार करती है, यह मेडिको लड़का कौन हो सकता है यह मैं भली-भाँति समझता था और मैंने भी लगभग चिल्ला कर कहा था।

''हाँ, हाँ, यह क्यों नहीं कहती कि तुम दीपक से प्यार करती हो, क्योंकि वह डॉक्टरी पढ़ रहा है और आगे चल कर डॉक्टर बनेगा।''

तो आपको किसने रोका है- ''अर्चना भी तो डॉक्टर बनेगी।''

यह प्रथमा ने कैसा तीर छोड़ा था। वह जानती थी मैं अर्चना को कभी प्यार नहीं कर सका था। वह तो मैं प्रथमा की बात में आकर उसके प्रेम के वशीभूत प्रथमा के शब्दों को अपने नाम से लिख अर्चना को अर्पित कर रहा था।

मैं उदास और दुखी मन से लौटा था। अच्छी तरह याद है रातभर सो न सका था। सुबह समझौते की मुद्रा में गया- ''हाँ, मुझे केवल मित्र रहना भी मंजूर है।'' प्रथमा हँसी थी। हम साथ-साथ चाय पीए थे।

इसी बीच प्रथमा के घर आने वाले उस मेडिकल लड़के से मेरी मित्रता बढ़ती गई और उसकी बातें मुझे बहुत ही विचित्र लगने लगी।

उसकी छोटी बहन कल्पना इसी बीच पटना आई और जैसी कि परम्परा थी वह प्रथमा के घर ठहरी। कल्पना बहुत ही लज्जालू किस्म की लड़की थी। उसके रहते मैं प्रथमा से मिल नहीं पाता था। ऐसे में एक दिन मैं घर में बैठा एक कविता लिख रहा था कि अर्चना का एक पत्र मिला।

''पटना आने के बाद भी मैं आपसे मिल नहीं पा रही, क्या यह संभव नहीं कि आप तिरस्कार से ही सही, मगर मेरी झोली में अपना एक पूरा दिन डाल दें जिसे मैं हर दिन सजा-सजा कर अल्पना बन सकूँ।''

यह पत्र अप्रभावी कैसे रहता। मैं अर्चना से मिलने उसके हॉस्टल गया तो पता चला कि अर्चना फिल्म देखने गई है। बस, आती ही होगी। अर्चना जल्दी ही लौटी थी मगर अकेली न थी साथ में एक लड़का था जिसका नाम राजीव था। अर्चना ने बताया- ''आज अचानक 15 वर्षों के बाद उसे अपने पूर्व प्रेमी राजीव से मुलाकात हो गई।'' मैंने एक पुस्तक को पढ़े बिना बंद कर दिया जिसे अभी-अभी पढ़ने के लिए खोलने की सोच ही रहा था।

मैं वापस प्रथमा के पास आया और पूरी कहानी सुनाकर अपने लिए सहानुभूति के कुछ शब्द चाहे थे तो- उसने हँसना शुरू किया तो सूरज को पता चल गया कि उसका भी अस्त होना निश्चित है। मैं रो रहा था और प्रथमा हँस रही थी। और मैंने निर्णय लिया सूर्य को जलना होगा- पल-पल, पल-पल प्रति क्षण तड़पना होगा।

मगर यह क्या? आज कई दशकों बाद जब वापस पटना आया हूँ तो अचानक प्रथमा की एक डायरी हाथ लग गई है। खोलता हूँ- ''सूरज को भी कभी अपनी व्यापकता छोड़ किसी ढिबरी में समाना चाहिए। हाँ, मेरे सूरज तुमने कभी भी प्रथमा को बर्फ की वह ठंडक क्यों नहीं दी जिसकी उसे तलाश थी? क्यों दूसरों के पत्र पढ़ा-पढ़ा उसे जलाते रहे और अपने सूर्य धर्म को निभाते रहे। हाँ, सूर्य, तेरी प्रथमा को अब भी तेरी तलाश है मगर तेरे ऊष्णता के साथ नहीं। उसे छोड़ कर ही तुम अपनी प्रथमा को पा सकोगे।''

और मैं दूर-दूर तक नजर दौड़ता हूँ, पूछता हूँ, प्रथमा कहाँ है? मगर किसी को यह पता नहीं।

मुझे प्रथमा की अभी भी तलाश है। क्या आपने उसे देखा है?

एल.एफ. 27, श्रीकृष्णापुरी, पटना-800001। मो0-09931918578, E-mail : mukul.arvind@gmail.com

– अभिजीत मिश्र

पैसे की हैसियत

पैसा अब
महज कागज का वह टुकड़ा न रहा
जिसके जरिए
कुछ जरूरत की चीजें,
खरीदी जा सके।
बढ़ गई है उसकी हैसियत,
अक्सर देखता हूँ
आदमी को ही भागते
उसके पीछे।
जिस मुस्कुराते हुए महात्मा की
तस्वीर छपी है पैसों के ऊपर,
वो अब आदम हो चले हैं।
नजरअंदाज कर दिए गए हैं उनके विचार।
ना किसी की जुबाँ पे, न बातों में,
ना चेहरों पर ही
दिखती है सत्य की कोई परछाई।
हर किसी के चेहरे पर
जैसे नकाब लग गया है।
जहाँ, भीतर की बातें कुछ हैं,
पर दिखतीं कुछ और हैं।
अब सबकुछ बिकने लगा है
पैसों के बल पर
बिकती है कलम,
बिकते हैं धार्म, मजहब
और बिक जाते हैं ईमान।
बिकती है दोस्ती, बिकती है जिन्दगी।
पैसे की हैसियत और बढ़ गई है।
अब बाज़ार में
खरीदी और बेची जाती है कुर्सी
बिकती है सत्ता।
खरीद ली जाती हैं
आम आदमी की छोटी-छोटी खुशियाँ।

बड़े से बड़े गम भी
पैसों पे बिक जाते हैं
बिक जाते हैं दर्द भी।
बचा रह जाता है
नशा पैसों का।
न करता अब कोई
किसी पे ऐतबार
यहाँ पैसे की हैसियत है बेशुमार।
पर, बड़े डरे और सहमें-से रहते हैं
वे लोग भी
जिनके पास दौलत है, शोहरत है।
काले और उजले के खेल में
उनकी हैसियत भी
पैसों की ही मुहताज है।
बाजार में दो रंगों के पैसों का प्रचलन है,
जंगली गिरगिट की तरह रंग बदलते हैं पैसे,
डर है उन्हें,
कब उनका पैसा अपना रंग बदल ले।
लोग उनके पैसों को काला समझ लें।
एक नशा अजीब-सा फैला है
हर गली, हर मोहल्ले में
जमाना कुछ ऐसा बदला है
पैसे के पहिए पे चलते-चलते
इन्सानियत ने भी सीख लिया बिकना
पैसों के बीच पलते-पलते
पता नही,
क्या कुछ न खरीद लेगा यह पैसा।
एक भगदड़-सा नज़ारा है,
जहाँ कोई न किसी का सहारा है
सब भाग रहे हैं
खुदगर्जी की ख्वाहिश लिए
इस पैसे के पहिए तले
अपनों की चाहत,
बच्चों की मुस्कुराहट
जिन्दगी के फलसफे
सब रौंदे जा रहे हैं।

◈◈◈

◈◈◈

abhijeetmishra209@gmail.com

'पुष्प की अभिलाषा' और 'अमर राष्ट्र' जैसी ओजस्वी रचनाओं के रचयिता, 'प्रभा' और 'कर्मवीर' जैसे प्रतिष्ठित पत्रों के संपादक **माखनलाल चतुर्वेदी** का जन्म 4 अप्रैल 1889 को हुआ। उनकी कविताओं में जहाँ देशप्रेम का उत्कर्ष है वहीं प्रकृति और प्रेम का भी सुंदर चित्रण हुआ है। इस अंक के दस्तावेज स्तंभ के अंतर्गत हम उनकी स्मृति में प्रकाशित कर रहे हैं उन्हीं की कविता **वल्लरी और वृक्ष**। यह कविता अगस्त 1954 की **'अवंतिका'** में प्रकाशित हुई थी।

वल्लरी और वृक्ष

वल्लरी, मत वृक्ष से दब,
वृक्ष है अधिकार तेरा
क्योंकि ऊँची वस्तु पर
चढ़ना सतत व्यापार तेरा!

शीश तक तू जा भले ही
वृक्ष को जग वृक्ष कहता
भले अर्पण हो न दुनिया
मानती अधिकार तेरा।

वृक्ष पर अहसान तेरा है
कि तू चढ़ती उसी पर
उसी की शृंगार है तू
वह नहीं शृंगार तेरा

वृक्ष की मुहताज तू कब
है हरित अभिमान वाली!
एक ऊँचा जग रहा है-
अमरतम संसार तेरा।

लौह पर चढ़ती जवानी
ले, हरित तोरण सजाती!
लौह-मंडप पर लहर,
बनती स्वयं मोहक चितेरा!

कंटकित झाड़ों सजाती
तू हरे अरमान अपने
मोह कब तेरी विवशता
रूप कब अभिमान तेरा!

वृक्ष झुकता भूमि पर
लाचार बोझिल और व्याकुल
किंतु ऊँचे और ऊँचे
पर चढ़े अरमान तेरा!

हरित जग में तू असंभव
नित्य संभव पर दिखाती
लौह-खंभे या कि दीवारों
लगाती हरित डेरा!

माखनलाल चतुर्वेदी

कौन-सा विस्तार? कैसी
चरम सीमा? कौन-सी गति?
वृक्ष क्या जाने पहुँच-
निज शीश पर रख, स्वप्न घेरा।

भूमि पर उगे भले तरु,
भूमि पर वह आ न सकता
भूमि पर, आकाश पर, बस
एक-सा विस्तार तेरा!

वृक्ष ने किस दिन किए,
निज फूल-फल तेरे हवाले?
वृक्ष की दुनिया अलग है
अलग है संसार तेरा।

तू चढ़ाई की दिवानी,
तुझे नित दुनिया बसानी
भूल है जो विश्व कहता-
वृक्ष है अभिसार तेरा।

तू नहीं सौंदर्य में, रस-
में, सुगंधों में, फलों में,
- वृक्ष की मुहताज है;
है वृक्ष तेरा एक चेरा!

लिपटना वरदान तेरा
कौन है जिसको न देती?
ठूँठ, तरु, पशु, मनुज
ऐसा कौन है, तूने न घेरा?

वृक्ष देता आम तो सखि!
तू मुझे अंगूर देती
विश्व-मस्तक डोलते हैं
माँते मधु-दान तेरा!

◈◈◈

A. N. COLLEGE, PATNA

Established in 1956

Quality Education is our Motto

A Mark of Quality Education

A Constituent Unit of Magadh University

Grade-'A' Re-Accredited by NAAC

CPE Status Accorded by UGC

MBA & MCA Approved by AICTE

No. of Buildings	:	14 in sprawling campus
Faculty	:	Science, Arts, Management & IT
P. G. Teaching	:	23 Subjects
U.G. Teaching	:	23 Subjects
Vocational & Professional Courses:		
(i) *P.G. in Electronics, Env. Sc., MBA, MCA, Biotechnology & Water Sc. & Mgt.*		
(ii) *Degree Course in BBM, BCA, EWM, Biotechnology, IT and BLIS*		
(iii) No. of Books in Library		: More than1 Lakh
Labs	:	Enriched Labs
Total No. of Computers	:	500

Special Features

Korean Centre for International Co-operation has been established in the college for mutual cooperation.
Research linkage of the college with University of Manchester and University of Cambridge.
Academic and Cultural Collaboration with Kangwan University, South Korea
Regular Campus Selection under Placement and Guidance Cell.
Wi-Fi Connectivity in Campus
A Digital Language Lab.
Major/Minor Research Projects are running funded by UGC, UNICEF, DST & DBT, Govt. of India
College has been selected in ERASMUS MUNDUS Programme
Ragging, Gender Harassment & Smoking are strictly prohibited in the campus
Excellent Performance in Campus to community work through NSS Wings
Two Courses i.e. Food Processing and Retail started under Community College Scheme of the Govt.
E-Library facilities.

Dr. Lalan Singh
Prof.-Incharge